मासिक

अरफ़ात किरण

रायबरेली

सोहबत-ए-नबवी (स0अ0व0) की तासीर

“दोस्त दुश्मन सब मानते हैं कि रसूलुल्लाह (स0अ0व0) की सोहबत में पारस की तासीर थी, जिसको मिल गई वह कुन्दन नहीं बल्कि खुद पारस बन गया, जानवर इन्सान बन गए और इन्सान फ़रिश्ते, उनकी ईमानी, अख़्लाक़ी, रूहानी तरबियत इतनी आला और मुकम्मल हुई जिससे ज़्यादा तसव्वुर में नहीं आ सकती, जो रसूलुल्लाह (स0अ0व0) के पास बैठा, रसूलुल्लाह (स0अ0व0) के रंग में रंग गया, शरीअत के सांचे में ढल गया, शरीअत की पैरवी बिला-इरादा होने लगी, इताअत आसान और तबअन मरग़ूब हो गई, गुनाह नापसंद हुए और फिर फ़ितरतन उनसे नफ़रत हो गई, यहां तक कि उम्मत का सहाबा (रज़ि0) के बारे में अक़ीदा है कि वह सबके सब इन्साफ़ करने वाले हैं और अदना सहाबी (रज़ि0) भी बाद के बड़े से बड़े वलीउल्लाह से अफ़ज़ल है।” (रहबरे इन्सानियत: ४२१)

हज़रत मौलाना सैय्यद मुहम्मद राबे हसनी नदवी (रह0)

मर्कज़ुल इमाम अबिल हसन अल नदवी
दारे अरफ़ात, तकिया कलां, रायबरेली

Sept
2025

नुबुव्वत का मक़सद और वजह

"बे इरादा दुनिया की मीज़ान का नाम "क़ानूने फ़ितरत" है और इरादा के साथ दुनिया की मीज़ान का नाम "क़ानूने शरीअत" है, बे इरादा दुनिया का निज़ामे अद्ल इसी ख़ुदाई मीज़ाने फ़ितरत से चल रहा है, अगर इस मीज़ान में एक ज़र्रा भी कमी बेशी हो जाए तो आलम का निज़ाम दरहम–बरहम हो जाए, इसी तरह इंसानी दुनिया का सुकून व इत्मिनान और अमन व अमान का निज़ाम इसी मीज़ाने शरीअत के ज़रिये क़ायम हो सकता है। अगर यह न हो तो इसका निज़ाम दरहम–बरहम होना भी लाज़िमी है। फ़रमाया:

"हम ने बेशुब्हा अपने पैग़म्बरों को खुली दलीलें दे कर भेजा और उनके साथ किताब और मीज़ान उतारी ताकि लोग अद्ल को क़ायम करें।" (अल हदीद: २५)

अम्बिया की बेअसत का यह मक़सद और वजह है कि लोग शरीअत की मीज़ान के मुताबिक़ अद्ल और तवाज़ुन क़ायम रखें, इस मौजूदा दुनिया ही के निज़ाम की अम्न व सलामती के लिए है, आज यूरोप के इत्तिहाद की गूंज ने दुनिया के गोशा गोशा को पुरशोर बना दिया है, आज रसूलों की अहमियत और उनकी तालीमात की ज़रूरत पर शकूक व शुब्हात की झाला बारी हो रही है लेकिन वहमी व ख़्याली मुबाहिस से क़तअनज़र करके अमली हैसियत से दुनिया की एक एक इलाक़ा और एक एक आबादी का जाइज़ा लो, आज जहाँ कहीं भी सच्चाई की कोई रौशनी और हक़ीक़त की कोई किरण चमकती है, वह इसी मतला–ए–ख़ुर्शीद से छन कर निकली है, कोई दीनदार हो या मुल्हिद, ख़ुश अक़ीदा हो या बे अक़ीदा, यूनान का हकीम हो या अफ़्रीक़ा का जाहिल, यूरप का मुतमद्दिन हो या सहारा का वहशी, रूमी हो या ज़ंगी, ईसवी हो या मूसवी, बुतपरस्त हो या मोवह्हिद, मजूसी हो या हिन्दू, मुस्लिम हो या ग़ैर मुस्लिम, शहरी हो या देहाती, हिमालय की चोटी पर आबाद हो या ज़मीन की गहराई में, कहीं भी हो, कोई भी हो, अगर वह अल्लाह के नाम की अज़मत से वाक़िफ़ है और नेकी और बदी की तमीज़ से आशना है तो वह ख़ुदाई रसूलों और रब्बानी पैग़म्बरों के अलावा किस मोअल्लिम की कोशिशों का ममनून है? आज जहाँ भी अद्ल व मीज़ान का वजूद है, वह किसी यूनानी हकीम, या यूरोपियन फ़िलास्फ़र की तालीम व तसनीफ़ व तक़रीर व ख़ुत्बा का असर नहीं है बल्कि तबक़ा–ए–अम्बिया ही के बेवास्ता या बवास्ता तालीमात का नतीजा है, आज दुनिया के गोशे–गोशे में कैसे ही बदतरीन मुबल्लिग़ सही मगर नेकी, अदल, एहसान, हमदर्दी, नेकोकारी, हुस्ने ख़ुल्क़ की तालीम, तबलीग़ और दावत उन्हीं की ज़बानों से हो रही है जो रसूल के पैरो और पैग़म्बरों के ताबे हैं, जो अक़ीदा के मुल्हिद हैं उनको भी नेकोकारी उन्हीं पैग़म्बरों के नादानिस्ता फ़ैज़ाने तालीम का नतीजा है, इस बिना पर जो लोग ज़ेहनी तौर से पैग़म्बरों के मुनकिर हैं, वह भी अमली तौर से उनकी तालीम के मुक़िर और मोतरिफ़ हैं, इसीलिए अम्बिया (अलैहिमुस्सलाम) का वजूद तमाम दुनिया के लिए रहमत बन कर ज़ाहिर हुआ है, क़ुरआन ने आसमानी किताबों को बार बार "रहमत" व "हुदा" रहमत और रहनुमाई की ग़रज़ से भेजने का जो ऐलान किया है, वह तमामतर इसी ग़रज़ व ग़ायत की तशरीह है, इसी लिए ख़ातमे नबुव्वत मोहम्मद रसूलुल्लाह (स०अ०व०) की ज़ात ए वाला सिफ़ात तमाम आलम के लिए रहमत बन कर आई, फ़रमाया: "और हम ने तुझको (ऐ मोहम्मद!) तमाम दुनिया के लिए रहमत बना कर भेजा है।"

सैय्यदुत्ताइफ़ा अल्लामा सैय्यद सुलेमान नदवी (रह०)
(सीरतुन्नबीः 4/150–151)

بِسْمِ اللّٰهِ الرَّحْمٰنِ الرَّحِيْمِ

मासिक

अरफ़ात किरण

रायबरेली

अंक: 9 सितम्बर २०२५ ई० वर्ष: 17

सम्पादकीय मण्डल

बिलाल अब्दुल हयि हसनी नदवी

मुफ़्ती राशिद हुसैन नदवी

अब्दुस्सुब्हान नाख़ुदा नदवी

मुहम्मद हसन नदवी

सह सम्पादक

मुहम्मद मक्की हसनी नदवी

मुहम्मद अमीन हसनी नदवी

मुहम्मद अरमुग़ान बदायूंनी नदवी

अनुवादक

मुहम्मद सैफ़

हुज़ूर (ﷺ) की दुनिया से बेरग़बती

अल्लाह के रसूल (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) ने फ़रमाया:

"मेरी और दुनिया की मिसाल उस मुसाफ़िर की सी है जो कुछ देर के लिए दरख़्त के नीचे साया लेता है, फिर उठता है उसे छोड़कर अपनी राह चल देता है।"

(मुसनद अहमदः 3781)

E-Mail: markazulimam@gmail.com www.abulhasanalinadwi.org

मर्कज़ुल इमाम अबिल हसन अल–नदवी दारे अरफ़ात, तकिया कलां रायबरेली, यू०पी० 229001

मो० हसन नदवी ने एस० ए० आफसेट प्रिन्टर्स, मस्जिद के पीछे, फाटक अब्दुल्ला ख़ाँ, सब्ज़ी मण्डी, स्टेशन रोड रायबरेली से छपवाकर आफिस अरफ़ात किरण, मर्कज़ुल इमाम अबिल हसन अल–नदवी, दारे अरफ़ात, तकिया कलां रायबरेली से प्रकाशित किया।

Markazul Imam Abil Hasan Al-Nadwi Samiti (Punjab National Bank) A/c No. 6127002100000339 (IFSC: PUNB0612700)

हुस्ने आदमियत का नमूना

नतीजा–ए–फ़िक्र: जनबा ताबिश मेहदी (रह0)

हुस्ने आदमियत का बस वही नमूना है
"काना ख़ल्क़ुहुल कुरआन" जिसके हक़ में आया है

यह हमारा और उसका एक अटूट रिश्ता है
हम गुलाम हैं उसके वह हमारा आक़ा है

उनका नाम आता है जबभी मेरे होटों पर
ख़ुशबुएं बिखरती हैं, जिस्म जगमगाता है

जाने किस जहां में हूं, जाने किस फ़िज़ा में हूं
हुस्ने मस्जिदे नबवी जबसे मैंने देखा है

अपने क्या पराए क्या, फ़ैज़याब है दुनिया
रहमत-ओ-सख़ावत का वह तो एक दरिया है

तुमने ही दिखाया है जादव-ए-ख़ुदा हमको
पहले तुमको पाया है फिर ख़ुदा को पाया है

इस क़दर रूस्वा है जो उम्मते नबी यारो
दीने हक़ से दूरी का यह खुला नतीजा है

उस नमाज़ से ग़ाफ़िल अब हैं उम्मती उसके
ठंडक अपनी आंखों की वह जिसे बताता है

मुस्तफ़ा के सब साथी दीन के सितारे हैं
और जो सितारा है मोहर-ओ-माह जैसा है

उल्फ़ते पयम्बर है, उल्फ़ते सहाबा (रज़ि0) भी
जो भी उनसे जलता है वह नबी से जलता है

उसकी क़द्र-ओ-क़ीमत तो हमसे पूछिये ताबिश!
सीरते पयम्बर में जिसने ख़ुदको ढाला है

इस अंक में:

इन्सान–ए–कामिल का नमूना–ए–इन्सानियत......................3

बिलाल अब्दुल हयि हसनी नदवी

तक़वा क्या है?..4

बिलाल अब्दुल हयि हसनी नदवी

फ़स्क़ व तफ़रीक़ के मसले..5

मुफ़्ती राशिद हुसैन नदवी

फ़ेमिनिज़्मः औरतों के अधिकार और इस्लाम.......................7

सैय्यद मुहम्मद मक्की हसनी नदवी

ग़ज़्वात–ए–रसूल (स0अ0व0)–इन्सानियत के लिए 10

मोहम्मद अमीन हसनी नदवी

रसूलुल्लाह (स0अ0व0) की विदेश नीति............................12

मोहम्मद नज्मुद्दीन नदवी

रसूलुल्लाह (स0अ0व0) का पैग़ाम.................................15

मुहम्मद मुसअब नदवी बाराबंकवी

दीन की दावत और नवीन मीडिया.................................17

अब्दुल अली हसनी नदवी

इस्लामोफ़ोबिया और सीरते नबवी (स0अ0व0)....................19

मुहम्मद अरमग़ान बदायूनी नदवी

सम्पादकीय

इन्सान-ए-कामिल का नमूना-ए-इन्सानियत

बिलाल अब्दुल हयि हसनी नदवी

''जो लोग दुनिया की तारीख़ से वाक़िफ़ हैं, वह जानते हैं कि दुनिया के लिए सबसे मुबारक दिन वह था जिस दिन रसूल–ए–इंसानियत (स0अ0व0) इस दुनिया में तशरीफ़ लाए। तक़रीबन डेढ़ हज़ार साल पहले की दुनिया इंसानों की दुनिया नज़र नहीं आती, वह कहीं दरिंदों की दुनिया नज़र आती है, तो कहीं इंसान नुमा जानवरों की दुनिया नज़र आती है। उस वक़्त की दो मुतमद्दिन हुकूमतें रोमन अम्पायर (Roman Empire) और पर्शियन अम्पायर (Persian Empire) जिन का दबदबा था, उनका तमद्दुन क्या था? एक सड़ा हुआ लाशा था जिस की बदबू से उस वक़्त की पूरी दुनिया परेशान थी। इन दोनों हुकूमतों की तारीख़ देख कर जिस्म के रोंगटे खड़े हो जाते हैं और हैरत होती है कि इंसान गिरता है तो जानवरों को पीछे छोड़ देता है। उस की अक़्ल लज़्ज़त अंदोज़ी के लिए ऐसे ऐसे ज़ालिमाना तरीक़े इख़्तियार करती है जिसकी तरफ़ किसी ऐसे इंसान का ज़ेहन भी नहीं जा सकता जिस के पहलू में धड़कता हुआ दिल हो। इस तीरा व तारीक दुनिया में इंसान भटक रहा था, उसको ज़िंदगी का सिरा नहीं मिल रहा था और न कहीं उम्मीद की किरन नज़र आ रही थी और लगता था कि शायद दुनिया अपनी तबाही के दहाने पर पहुँच चुकी है और उस के पैदा करने वाले ने उस को फ़ना कर देने का इरादा फ़रमा लिया है। लेकिन अल्लाह को कुछ और मंज़ूर था, दुनिया को अपना नया सफ़र शुरू करना था, उसको तरक़्क़ी के बुलंद तरीन मेयार तक पहुँचना था और वह इंसानियत जो शर्मसार खड़ी थी, उस का सर फ़ख़्र से बुलंद होना था। उलूम व फ़ुनून की गुथ्थियाँ सुलझनी थीं और जगह जगह इल्म की क़ंदीलें रौशन होनी थीं। बेबसों और कमज़ोरों को उन का हक़ मिलना था और औरत जो सर बाज़ार रुस्वा हो रही थी उस को अपना मुक़ाम हासिल होना था। दुनिया के जहन्नुम कदा को जन्नत कदा में तबदील होना था कि मक्का की घाटियों से आफ़ताब–ए–नुबूव्वत तुलूअ हुआ। रहमत–ए–आलम (स0अ0व0) क्या तशरीफ़ लाए, बहार आ गई। जो लब मुस्कुराने के लिए तरस गए थे उन पर मुस्कुराहट आई, जो दिल उन हालात को देखकर मसोस–मसोस कर रह जाते थे उन की कली खिल गई। यह ख़ुशबू ऐसी फैली कि एक सदी भी नहीं गुज़रने पाई कि दुनिया का हर हिस्सा मुअत्तर हो गया। बादे ख़ज़ाँ के बाद बहार का दौर आया, बादे समूम के बाद बादे नसीम के ऐसे दिलनवाज़ झोंके चले जिन्होंने इन्सानी जान को ताज़गी बख़्शी, मुर्दा दिलों की मसीहाई की और इंसानों में इंसानियत की बहार आ गई।

इल्म की यह ख़ुशबू जो हिजाज़ की मुबारक सरज़मीन से चली तो उसने क्या एशिया और क्या यूरप व अमरीका, मुल्क–मुल्क को मुअत्तर किया और लोगों ने सुकून की साँस ली। मगर उन ही इंसानों में वह दरिंदह सिफ़त लोग भी थे जिन की आदत ख़ून चूसने की थी, जिन का काम ही अपनी राहत, लज़्ज़त और इज़्ज़त के लिए दूसरों की इज़्ज़तें लूटना और उन को सताना था। उन को यह अद्ल व इंसाफ़ एक आँख न भाया और पहले दिन से उन्होंने इस आदिलाना निज़ाम और रसूले रहमत (स0अ0व0) के ख़िलाफ़ तरह तरह की साज़िशें शुरू कीं। यह सिलसिला पहले दिन से चला और मुख़्तलिफ़ मरहलों से गुज़रता हुआ आज दुनिया के नाम निहाद मुतमद्दिन मुल्कों की शक्ल में मौजूद है जिनके पास उसी रोमन और पर्शियन कल्चर की दुहाई है। इस्लाम ने इस तमद्दुन को जिस तरह तराश–ख़राश कर सजाया था और उस की ग़लाज़तें साफ़ की थीं और उस को निखारा था और उस में तरह तरह के फूल सजा कर ऐसा हसीन गुलदस्ता दुनिया को दिया था जिस का तसव्वुर उस से पहले दुनिया नहीं कर सकती थी। यह नाम निहाद मतमद्दिन क़ौमें नहीं चाहतीं कि अद्ल व इंसाफ़ की इस ख़ुशबू को बाक़ी रखा जाए। उन का मंशा सिर्फ़ यह है कि उन की ताक़त बाक़ी रहे, उन का सिक्का चलता रहे। इस के लिए क़ौमें की क़ौमें और मुल्क के मुल्क भी तबाह होते चले जाएँ, इस की उन को कोई परवाह नहीं।

आज जो कुछ रसूले रहमत (स0अ0व0) की ज़ात ए अक़्दस और आप (स0अ0व0) की मुबारक ज़िंदगी के ख़िलाफ़ कहा या लिखा जा रहा है, यह उसी कीने का नतीजा है जो उन दरिंदह सिफ़त इंसानों में पहले दिन से मौजूद था और आज उस की तरक़्क़ी याफ़्ता शक्लें हैं जो हमारे सामने आती रहती हैं। मगर यह भी एक हक़ीक़त है कि इंसानों की अक्सरियत अपने अंदर धड़कता हुआ दिल और इंसानियत का दर्द रखती है। उस के सामने जब इंसाने कामिल (स0अ0व0) का नमूना ए इंसानियत पूरी सच्चाई के साथ आता है तो उन के दिलों की कैफ़ियत बदलने लगती है और एक प्यास महसूस होने लगती है जो सिर्फ़ उस्वा–ए–रसूले अकरम (स0अ0व0) के आबे ज़ुलाल से बुझती है। आज हम मुसलमानों की सबसे बड़ी ज़िम्मेदारी है कि हम एक तरफ़ सीरते तय्यिबा के पैग़ाम को आम करने की कोशिश करें और एक एक फ़र्द तक उस को पहुँचाएँ और ख़ुद इस मुबारक उस्वा को सामने रख कर अपनी ज़िंदगीयों को उस के मुताबिक़ करने की कोशिश करें, ताकि इल्म व अमल की दावत दुनिया तक पहुँचे, हक़ीक़त और सच्चाई के जानने वालों को उन की ग़िज़ा मिल सके और तारीक़ दुनिया में जगह जगह इल्म व अमल, अद्ल व इंसाफ़ और अम्न व अमान की क़ंदीलें रौशन हों।''

तक़्वा क्या है?

बिलाल अब्दुल हयि हसनी नदवी

बहुत से बुज़ुर्गाने दीन की एहतियात के बड़े वाक़्यात हैं। हज़रत मौलाना अली मियाँ नदवी (रह0) के परदादा, हज़रत सैय्यद अहमद शहीद (रह0) के ख़लीफ़ा थे। अंग्रेज़ों के ज़माना में वह मुलाज़मत करते थे और ओहदेदार भी थे। उन की एहतियात का आलम यह था कि वह किसी की दावत भी क़बूल नहीं करते थे, अगर कहीं जाना होता तो अपना ही खाते थे। एक जगह किसी ताल्लुक़ वाले के यहाँ उन का जाना हुआ, उन्होंने अपने यहाँ खाने का बहुत इसरार किया मगर वह मना करते रहे। आख़िर में उन्होंने कहा कि मैं तो क्या, मेरा घोड़ा भी किसी के यहाँ नहीं खाता। इत्तेफ़ाक़ से किसी ने घोड़े के आगे घास डाली तो वाक़ई उस ने अपना मुँह हटा लिया और घास नहीं खाई, इस पर लोगों को बड़ा ताज्जुब हुआ।

हक़ीक़त यह है कि जो मोहतात होता है तो अल्लाह तआला उस के दिल को रौशन कर देते हैं। हज़रत क़ारी सिद्दीक़ अहमद बांदवी (रह0) फ़रमाते थे कि मैं जिस ज़माना में मज़ाहिरुल उलूम में पढ़ता था तो मैं बहुत मोहतात रहता था, मैं दिनभर में बस एक रोटी खाता था। फ़रमाते थे कि उस वक़्त मेरी अजीब कैफ़ियत हो गई थी, लगता था कि जो कल होने वाला है वह आज ही मेरे दिल पर मुनकशिफ़ हो रहा है। बल्के एक अजीब क़िस्सा हुआ, एक लड़के के मुताल्लिक़ ऐसा मालूम हुआ कि कल उस को पुलिस उठा कर ले जाएगी। मैंने उस लड़के से भी यह बात कह दी कि तुम यहाँ से चले जाओ वरना पुलिस तुम्हें पकड़ ले जाएगी। पहले उस ने कोई तवज्जो न दी मगर फिर वह वहाँ से चला गया और अगले दिन पुलिस आ गई। क़ारी साहब फ़रमाते थे कि यह पुरानी बात है जब मैं मोहतात रहता था। अब तो मेरा क़िस्सा यह है कि मैं हर जगह जाता हूँ, मुझे हर जगह खाना खाना पड़ता है। मैं एहतियात करता हूँ मगर उस के बावजूद भी खाना पड़ता है, अब मुझे वह कैफ़ियत हासिल नहीं है।

वाक़्या यह है कि दिल में जो रौशनी और सफ़ाई पैदा होती है, उस में सबसे ज़्यादा दख़ल "अक़्ल–ए–हलाल" का है। जितना ज़्यादा उस का एहतिमाम होगा उतनी ही दिल में रौशनी पैदा होगी। यह वह चीज़ है कि उस का असर नस्लों में भी मुन्तक़िल होता है। हज़रत मौलाना अब्दुल हई हसनी (रह0) बहुत ज़्यादा एहतिमाम करते थे कि कहीं से कोई मुश्तबह चीज़ न आने पाए। अल्लाह ने उस का असर डाला। अल्लाह ने उन्हें दो बेटे और दो बेटियाँ दीं, माशाअल्लाह सब आफ़ताब व माहताब बन कर चमके। उन की औलाद से अल्लाह ने खूब काम लिया। सच्ची बात यह है कि उस में अक़्ल–ए–हलाल के एहतिमाम का बड़ा हिस्सा है। हज़रात–ए–सहाबा (रज़ियल्लाहु अन्हुम) की ज़िन्दगियों में भी इस का बहुत एहतिमाम था। अगर ज़रा भी शुब्हा होता तो वह हाथ नहीं लगाते थे।

हदीस में फ़रमाया गया कि जहन्नुम में ले जाने वाली चीज़ों में पहली चीज़ मुँह यानी ज़बान का चटख़ारा है, अक़्ल–ए–हलाल का एहतिमाम न करना है, हराम माल से अपना पेट भरना है। आम तौर पर जो लोग दुनियादार होते हैं, वह कुछ नहीं सोचते, बहुत आराम से वह सूद खा लेते हैं, सूदी कारोबार करते हैं, रिश्वत लेते हैं और खाते हैं, दुकानदार हैं और दुकान मुश्तरक है तो दूसरे का माल खाते हैं, नाप तौल में कमी करके हराम खाते हैं, ख़राब नोट चला कर चीज़ों को ग़लत तरीक़े पर ख़रीदते हैं, नाक़िस नोट को धोखा दे कर चला देना और उस से चीज़ों को ख़रीदना हराम है। ज़ाहिर है अब आदमी इस हराम से पेट भरेगा तो जहन्नुम में जाएगा। इसलिए इन सब बातों पर बहुत ज़्यादा तवज्जोह देने की ज़रूरत है।

यह बात भी बड़ी अहम है कि तिजारत करने वाले, कारोबार करने वाले और खेती बाड़ी करने वाले ज़कात अदा करने का भी ख़्याल रखें। अगर ज़कात अदा न की गई तो सारा का सारा माल नजिस हो गया और जब नजिस हो गया तो गोया हराम खाया और हराम खाया तो जहन्नुम का रास्ता बनाया। यह बड़ी ख़तरनाक बात है।

इसी तरह विरासत की तक़सीम का मसला भी है। विरासत की तक़सीम शरीअत के मुताबिक़ कौन करता है? बहन का हक़ खाते हैं, बल्कि अब तो लोग भाई का हक़ भी मार लेते हैं। जो भाई ताक़तवर है वह कमज़ोर को दबाता है और सोचता है कि सब कुछ हम ही को मिल जाए। ज़ाहिर है जिस ने दूसरे का हक़ मारा और ज़्यादा लिया तो उस ने हराम खाया और जहन्नुम के लिए अपना रास्ता बनाया।

फ़स्क़ व तफ़रीक़ के मसले

मुफ़्ती राशिद हुसैन नदवी

तलाक़ के कुछ ज़रूरी अहकाम पिछले सफ़ात में बयान कर दिए गए हैं, तलाक़ का इख़्तियार बहुत सी मसलहतों के सबब शरीयत ने सिर्फ़ मर्दों को दिया है, औरतें तलाक़ नहीं दे सकतीं, लेकिन अगर औरतों को शौहरों के साथ अपनी ज़िंदगी गुज़ारना मुश्किल हो और शौहर तलाक़ देने पर आमादा न हो तो शरीयत ने फ़स्ख़ का तरीक़ा मुक़र्रर कर रखा है यानी वो उमूमी अस्बाब जिन की बुनियाद पर शौहर के साथ ज़िंदगी गुज़ारना मुमकिन नहीं होता है, अगर उन में से कोई सबब पेश आ जाए तो औरत ये कर सकती है कि अपने मामला को किसी दार–उल–क़ज़ा में पेश कर दे। क़ाज़ी शौहर को भी तलब करेगा और बाक़ायदा दोनों की बात सुनेगा, ज़रूरत हो तो गवाह और सुबूत तलब करेगा और अगर साबित हो जाए कि औरत वाक़ई शौहर के साथ नहीं रह सकती, या साथ रहना बहुत दुश्वार है तो वो निकाह को फ़स्ख़ कर देगा और औरत को इद्दत गुज़ारने के बाद कहीं और निकाह कर लेने का इख़्तियार दे देगा और फ़रीक़ैन का फ़र्ज़ होगा कि वो क़ाज़ी की हिदायात पर अमल करें।

क़ाज़ी की ज़रुरतः

लेकिन निकाह को फ़स्ख़ करने के लिए क़ज़ा–ए–क़ाज़ी की ज़रूरत होती है, क़ज़ा का निज़ाम अलहम्दुलिल्लाह अब मुल्क के अक्सर हिस्सों में मौजूद है, सब से पहले ये सिलसिला बिहार में मौलाना अबुल–महासीन सज्जाद (रह0) की कोशिशों से क़ायम हुआ और आज भी बिहार, उड़ीसा और झारखंड में इमारत–ए–शरिया का निज़ाम मज़बूती के साथ क़ायम है। फिर पर्सनल लॉ बोर्ड की कोशिशों से लखनऊ में दार–उल–क़ज़ा क़ायम हुआ और फ़िलहाल मुल्क के तूल व–अर्ज़ में सैकड़ों दार–उल–क़ज़ा पर्सनल लॉ बोर्ड के तहत काम कर रहे हैं। ज़रूरतमंदों को क़रीबी दार–उल–क़ज़ा का पता लगाकर वहां अपना मामला हल करवा लेना चाहिए। कुछ जगहों पर जमीयत–उल–उलमा के तहत शरई पंचायतें क़ायम हैं, वहां भी इस तरह के मसाइल हल कराए जा सकते हैं।

फ़स्ख़ व–तफ़रीक़ के अस्बाबः

हिन्दुस्तान के दार–उल–क़ज़ाओं में मुन्दर्ज़ा ज़ेल चौदह अस्बाब में से किसी के पेश आने पर ज़ौजैन में तफ़रीक़ कराई जाती हैः

1. शौहर का मफ़क़ूद–उल–ख़बर होना।
2. शौहर का ग़ाएब ग़ैर मफ़क़ूद होना।
3. शौहर का अदाएगी नफ़क़ा से आजिज़ होना।
4. शौहर का इस्तेताअत के बावजूद नफ़क़ा नहीं देना।
5. शौहर का हुक़ूक़–ए–ज़ौजीयत अदा न करना।
6. शौहर का मजबूब (वो शख़्स जिस का उज़्व–ए–तनासुल कटा हुआ हो) होना।
7. शौहर का इन्नीन (नामर्द) होना।
8. शौहर का मजनून होना।
9. शौहर का मजज़ूम (कोढ़ में मुब्तला), मबरूस (सफ़ेद दाग़ वाला होना), या ऐसे मर्ज़ में मुब्तला होना जिस के बाइस बग़ैर ज़रर औरत का साथ रहना नामुमकिन हो।
10. निकाह का ग़ैर कुफ़ू में होना या ग़बन–ए–फ़ाहिश के साथ होना।
11. औरत का हुरमत–ए–मुसाहरत से दो–चार होना।
12. नाबालिग़ का ख़यार–ए–बुलूग़ को इख़्तियार करना।
13. शौहर का तकलीफ़–देह मार पीट करना।
14. ज़न व शौहर में शिक़ाक़ होना।

अगर किसी के साथ इन अस्बाब में से कोई सबब

पेश आए और वो अपना निकाह फ़स्ख़ कराना चाहती हो तो क़रीबी दार–उल–क़ज़ा से रुजू करना चाहिए। क़ाज़ी शरीयत की रोशनी में मामला को हल करेंगे, इसीलिए हमें ज़्यादा तफ़सील करने की ज़रूरत नहीं है, लेकिन मुख़्तसरन इन अस्बाब की कुछ वज़ाहत की जाती है।

शौहर का मफ़क़ूद–उल–ख़बर होना:

जो शख़्स मफ़कूद–उल–ख़बर हो जाए, कुछ पता न हो कि कहां है? ज़िंदा है या नहीं? तो उस की बीवी क्या करेगी? अइम्मा के इस के बारे में बुनियादी तौर पर दो नुक़्ता–ए–नज़र हैं: अहनाफ़ व–शवाफ़े वग़ैरह के नज़दीक वो उस वक़्त तक अपना निकाह नहीं कर सकती जब तक उस की मौत की तस्दीक़ न हो जाए, इन हज़रात की दलील "तहतॉवी" में मौजूद एक रिवायत है, जब कि इमाम मालिक के नज़दीक क़ाज़ी ऐसी औरत के लिए चार साल की मुद्दत मुक़र्रर करेगा, इस मुद्दत तक शौहर का पता न चले तो क़ाज़ी निकाह फ़स्ख़ कर देगा फिर इद्दत गुज़ारने के बाद औरत दूसरा निकाह करने के लिए आज़ाद होगी। (बिदायत–उल–मुजतहिद: 2/52, अल–फ़स्ल–उल– सालेस फ़ी ख़यार–अल–फ़क़्द)

अलबत्ता अहनाफ़ के नज़दीक एक रिवायत के मुताबिक़ जब पैदाइश के ऐतबार से 90 साल गुज़र जाएं और एक रिवायत के मुताबिक़ जब उस के शहर के तमाम हम–उम्रों की मौत वाक़े हो जाए तो उस की मौत का हुक्म लगाया जाएगा और अब इद्दत गुज़ारने के बाद उसकी बीवी निकाह कर सकती है। (हिंदिया: 2/300, किताब–उल–मफ़क़ूद, व–शामी: 3/362, किताब–उल–मफ़कूद)

लेकिन ज़ाहिर बात है इतनी तवील मुद्दत गुज़रने के बाद मौत का हुक्म लगाने से अगर बीवी ज़िंदा भी हो तो उसका कोई फ़ायदा नहीं हो सकता, इसी लिए मसला की नज़ाकत को देखते हुए मुताख़्ख़िरीन–ए–अहनाफ़ ने इस मसला में इमाम मालिक का क़ौल इख़्तियार करने की इजाज़त दी, चुनांचे अल्लामा शामी फ़रमाते हैं: "बज़ूज़ीया में है कि हमारे ज़माना में फ़तवा इमाम मालिक के क़ौल पर है।" (शामी: 2/362)

लेकिन किसी मसला में ज़रूरत के तहत जब किसी दूसरे इमाम का मसलक इख़्तियार करना हो तो उस की कई शर्तें हैं जिन को हकीम–उल–उम्मत मौलाना अशरफ़ अली थानवी ने मालिकी उलमा से ख़त व–किताबत करके ख़ूब मुनक़्क़ह कर दिया है। (देखिए किताब "अल–हीला–तुल–नाजिज़ा" सफ़ा 200 व–मा बश्अद)

मौलाना अब्दुल समद रहमानी ने अपनी किताब में इन शराइत के बारे में जो कुछ लिखा है, उस का खुलासा मुंदर्ज़ा ज़ैल है:

"ज़रूरत के वक़्त दूसरे इमाम की तक़लीद करने में कोई हरज नहीं है लेकिन ये शर्त है कि इस इमाम ने जिन चीज़ों को ज़रूरी क़रार दिया है, उन सब का इल्तिज़ाम करे, लिहाज़ा हनफ़ी क़ाज़ी के पास जब मफ़क़ूद–उल–ख़बर की बीवी अपना मामला पेश करे तो उसे मुंदर्ज़ा ज़ैल उमूर का लिहाज़ रखना होगा:

1. ज़ौजा मफ़क़ूद–उल–ख़बर शाहिदों के ज़रीये पहले मफ़क़ूद–उल–ख़बर से अपना निकाह साबित करे।
2. फिर उस का लापता होना साबित करे।
3. फिर क़ाज़ी खुद भी मुकम्मल तौर से उस की तहक़ीक़ करे और अख़बार वग़ैरह में एलान शाए कराए।
4. जब कोई पता न चले तो क़ाज़ी ज़ौजा मफ़क़ूद–उल–ख़बर को मज़ीद चार साल तक इंतज़ार करने का हुक्म दे, जब कि उसके नान–नफ़क़ा का इंतिज़ाम मौजूद हो और बीवी के मासियत में पड़ने का अंदेशा न हो, इस के बाद औरत के मुतालबा पर क़ाज़ी ये हुक्म देगा कि चार महीने दस दिन इद्दत–ए–वफ़ात गुज़ार कर वो कहीं अपना निकाह कर सकती है।
5. अगर उस के गुनाह में मुब्तला होने का डर हो तो एक साल के बाद ही क़ाज़ी तफ़रीक़ कर देगा।

और अगर औरत के नान–नफ़क़ा का नज़्म न हो और उस ने अपनी अर्ज़ी में नान–नफ़क़ा की परेशानी का भी ज़िक्र किया हो तो क़ाज़ी फ़ौरी तौर पर भी तफ़रीक़ का फ़ैसला कर सकता है। (किताब–उल–फ़स्ख़ व–तफ़रीक़, सफ़ा 65–74, ब–हवाला फ़तवा अल्लामा तैय्यब, अल्लामा हाशमी, अल्लामा सईद बिन सईद)

फ़ेमिनिज़्मः
औरतों के अधिकार और इस्लाम

सैय्यद मुहम्मद मक्की हसनी नदवी

औरत का हक़ हर दौर में बहस का मौज़ूअ रहा है। औरत की दानिशमंदी और समाज में मक़ाम के नज़रिया ने उसको मुख़्तलिफ़ फ़ीह (ऐसा मसला जिसपर सब एकमत न हों) बना रखा है और इस बिना पर औरत के साथ सुलूक की तारीख़ भी क़ाबिल–ए–बहस रही है। क़दीम मुआशरों में औरत को कमतर समझा गया। यूनान–ओ–रोम में वो जायदाद की तरह समझी जाती थी। हिंदुस्तान में बेवा को जलाने (सती) और कम उम्र की शादी का रिवाज था, जबकि अरब जाहिलियत में लड़कियों को ज़िंदा दफ़न किया जाता था। कुरून–ए–वुस्ता में यूरोप में औरत को जादूगर क़रार दे कर ज़िंदा जला दिया जाता और तालीम–ओ–विरासत से महरूम रखा जाता। सिनअतकारी के दौर में औरतों को सख़्त मेहनत के बावजूद कम उजरत दी जाती थी। जदीद दौर में भी औरत को वोट, तालीम और फ़ैसला साज़ी के हुक़ूक़ हासिल करने के लिए लंबी जद्दोजहद करनी पड़ी। आज भी घरेलू तशद्दुद, हरासानी और मसावी तनख़्वाह न मिलने जैसे मसाइल अभी तक जारी हैं। इस्लाम के आते ही रसूलुल्लाह (स0अ0व0) ने औरतों को इस दौर की जहालत से निकाला और इज़्ज़त बख़्शी और इसका असर वहां तक गया जहां कहीं भी इस्लाम पहुंचा, लेकिन तअल्ली के शिकार मग़रिबी मुमालिक ने इस्लाम को नहीं अपनाया और फ्रांसीसी इन्क़िलाब तक औरतें ज़ुल्म और बर्बरियत का शिकार रहीं और इसी हैजानी कैफ़ियत ने फ़ेमिनिज़्म जैसी तहरीक को जन्म दिया।

मौजूदा दौर में फ़ेमिनिज़्म एक समाजी और फ़िक्री तहरीक है जो औरत और मर्द को हर शोबा–ए–ज़िंदगी में यकसां बनाने की कोशिश करती है, इसके नज़दीक मसावात का मतलब ये है कि औरत और मर्द के दरमियान किसी भी मामले में कोई फ़र्क़ न रखा जाए, चाहे वो फ़र्क़ फ़ितरत की बिना पर ही क्यों न हो। फ़ेमिनिज़्म अपने उसूल–ए–रहमुमाई इंसानी सोच, क़वानीन और बदलते हुए समाजी रुझान से लेता है। इसके तहत आज़ादी का तसव्वुर बहुत वसीअ है, जहां हर फ़र्द खुद तय करता है कि उसे किस तरह ज़िंदगी गुज़ारनी है, हत्ता के लिबास और तअल्लुक़ात में भी कोई पाबंदी नहीं।

तारीख़–ए–फ़ेमिनिज़्मः

फ़ेमिनिज़्म के नज़रिया की बानी मैरी वोलस्टोनक्राफ्ट (Mary Wollstonecraft) मानी जाती है जिसने हुक़ूक़–ए–निसवां पर एक किताब (A Vindication of the Rights of Woman) लिखी, लेकिन फ़ेमिनिज़्म की इस्तिलाह को सबसे पहले "चार्ल्स फ़ोरिएर" (Charles Fourier) नामी फ्रांसीसी फ़लसफ़ी ने इस्तेमाल किया, 1880 के आख़िर में हुक़ूक़–ए–निसवां का तर्जुमान फ्रांसीसी जरीदा (La Citoyenne) भी जारी हुआ, इस जरीदा की बानी और मुदीर हुबर्टाइन ऑक्लर्ट (Hubertine Auclert) थी, इन सबका मक़सद समाज पर मर्दाना ग़लबे के ख़ातमे के ख़िलाफ़ और ख़्वातीन के उन हुक़ूक़–ओ– इकख़्तयारात को हासिल कराना था जिनसे मग़रिबी ख़्वातीन महरूम थीं, इस तसव्वुर को फ्रांस के इंक़िलाब के बाद से औरतों के ज़हन में डालना शुरू किया गया। इब्तिदाई दिनों में इस इस्तलाह को मर्दों के तहत समाज में ख़्वातीन की जद्दोजहद को आगे बढ़ाने के लिए एक पुर–कशिश नारे के तौर पर इस्तेमाल किया गया। फ्रांस में सियासती, समाजी और मज़हबी हालात में इस इस्तलाह ने ख़्वातीन को हुक़ूक़ दिलाने की कोशिशों को सरगर्म किया, फिर बीसवीं सदी के इब्तिदाई दौर में ये इस्तिलाह बर्तानिया में मुतारिफ़ हुई। चंद बरस बाद 1920 के क़रीब फ़ेमिनिज़्म की इस्तलाह फ्रांसीसी ज़बान के ज़रिए मिस्र पहुंच कर अरब दुनिया में या कहिए मुस्लिम दुनिया में दाख़िल हुई। अरबी में इसका तर्जुमा "नसाईया" से किया गया लेकिन ये बात ज़हन में रहनी चाहिए कि फ्रांसीसी फ़ेमिनिज़्म बर्तानवी फ़ेमिनिज़्म न था और न ही बर्तानवी फ़ेमिनिज़्म ज्यों का त्यों अमेरिका पहुंचा। ये इस्तिलाह अगरचे खुसूसन फ्रांस में ईजाद हुई मगर हर जगह उसने मुक़ामी हालात–ओ–क़वाइफ़ और समाजी–ओ–मुआशरती ताने–बाने के मुताबिक़ शक्ल–ओ–सूरत इख़्तियार की। चुनांचे जब ये इस्तिलाह मिस्र में मुतारफ़ हुई तो वहां भी उसके मुद्दआ के तय्युन में समाजी, सियासती और मज़हबी–ओ–मुआशरती हालात का दख़ल था। अलबत्ता पूरे इत्मिनान के साथ ये कहा जा सकता है कि बुनियादी तौर पर मग़रिबी दुनिया में औरत की मज़लूमियत के रद्दे–अमल में ये एक तहरीक की शक्ल में उभरी फिर यूरोप में और फिर बाक़ी दुनिया में फैलती गई।

तारीख़ के मुख़्तलिफ़ अदवार में ये तहरीक मुख़्तलिफ़ सूरतों में सामने आई जिन्हें उमूमी तौर पर

तीन बड़ी लहरों में तक़सीम किया जाता है।

पहली लहर:

उन्नीसवीं सदी के आख़िर और बीसवीं सदी के आग़ाज़ में औरतों ने बुनियादी शहरी–ओ–क़ानूनी हुक़ूक़ के हुसूल की तहरीक शुरू की। इस लहर को "पहली लहर" कहा जाता है। इसमें औरत को वोट देने का हक़ दिलाने के लिए सफ़्रेज मूवमेंट (Suffrage Movement) सबसे नुमायां थी। इसके साथ–साथ औरतों ने मिल्कियत, तालीम और मुलाज़िमत में महदूद हुक़ूक़ की जद्दोजहद भी की। इस लहर ने औरत को एक शहरी के तौर पर तस्लीम करवाने की राह हमवार की।

दूसरी लहर:

1960 की दहाई से 1980 तक चलने वाली दूसरी लहर का मक़सद सिर्फ़ क़ानूनी मसावात नहीं बल्कि समाजी और मआशी मसावात भी था। इस दौर में औरत ने घर की चारदीवारी से निकल कर मुलाज़िमत, मुआश और सियासत में बराबरी के मौक़ों का मुतालिबा किया। तौलीदी आज़ादी (Reproductive Rights), जिंसी आज़ादी और घरेलू ज़िम्मेदारियों में मर्द–ओ–औरत की शिरकत जैसे मसाइल इस लहर के मरकज़ी नुकात थे। बेट्टी फ़्रीडन (Betty Friedan) और सिमोन द बोउवार (Simone de Beauvoir) जैसी शख़्सियात ने औरत को उसके रिवायती किरदार से बाहर निकलने की तर्ग़ीब दी।

तीसरी लहर:

1990 के बाद फ़ेमिनिज़्म की तीसरी लहर सामने आई जो ज़्यादा मुतनव्वेअ और शुमूलियती थी। इस लहर में सिर्फ़ जिंसी बराबरी नहीं बल्कि नस्ल, रंग, ज़बान, क़ौमियत और तबाक़ाती फ़र्क़ को भी ज़ेर–ए–बहस लाया गया। औरत को अपनी शनाख़्त बनाने, अपनी पसंद के मुताबिक़ ज़िंदगी गुज़ारने और हर तरह की मुआशरती रुकावटों को चौलेंज करने का हक़ दिया गया। इस लहर ने बताया कि औरत एक यकसां गिरोह नहीं बल्कि मुख़्तलिफ़ शनाख़्तों और पस–मंज़र रखने वाला तबक़ा है।

इस्लाम में फ़ेमिनिज़्म की तारीख़:

जहां तक औरतों के हुक़ूक़ की बात है इस्लाम उनका सबसे बड़ा अलमबरदार है, वो हुक़ूक़ के साथ–साथ मर्द और औरत के मामलात में और हुक़ूक़ में तवाज़ुन और बैलेंस की बात भी करता है। इस्लाम मसावात को 'अद्ल' के उसूल पर परखता है, अल्लाह रब्बुल इज़्ज़त ने मर्द और औरत को अलग अलग सलाहियतें, नफ़्सियात और सलाहियतें अता फ़रमाई हैं। इस्लाम ने हुक़ूक़ और फ़राएज़ की तक़सीम फ़ितरी उमूर को सामने रख कर, दोनों के फ़ितरी तक़ाज़े, ज़रूरयात और दोनों की फ़ितरी सलाहियत को सामने रख कर की है और वही मुतवाज़िन और फ़ितरी तक़सीम है जो इस्लाम करता है। इस्लाम के नज़दीक आज़ादी का मतलब ये है कि इंसान अपनी ज़िंदगी अल्लाह की तय करदा हुदूद में रह कर गुज़ारे ताकि फ़र्द और मुआशरा दोनों महफ़ूज़ रहें।

जनाबे नबी करीम (स0अ0व0) ने औरत को ज़िंदगी का हक़ दिलवाया, विरासत का हक़ दिलवाया, राय का हक़ दिलवाया, इल्म का हक़ दिलवाया, मुआशरे में इज़्ज़त और एहतिराम अता किया और औरत को बतौरे मां के इज़्ज़त–ओ–एहतिराम, बतौरे बहन और बेटी के शफ़क़त, बतौरे बीवी के मोहब्बत के जज़्बात की तलक़ीन फ़रमाई और ख़ुद भी अपने अमल के साथ नबी करीम (स0अ0व0) ने अपने घर में अपने ख़ानदान में इसका अमली नमूना पेश किया।

जदीद दुनिया में भी मुफ़्तियान–ए–किराम ने औरतों को हर तरह की आज़ादी फ़राहम की है, किसी कंपनी में नौकरी हो या अपनी तिजारत के ज़रिए रोज़गार हो, गाड़ी, मोटर साइकल या हवाई जहाज़ का उड़ाना हो या कहीं दूर दराज़ मुमालिक के अस्फ़ार हों, इन तमाम बातों की शरई इजाज़त है मगर इनकी फ़ितरत और ज़रूरत के लिहाज़ से इंसाफ़ यही होगा कि उनके साथ कोई महरम हो और किसी ग़ैर–महरम की बदनीयती के शिकार से बचाने के लिए महरम का साथ और ग़ैर–महरम से कुल्ली परदा की हद मुक़र्रर की है।

फ़ेमिनिज़्म की बुनियादी अक़साम

(1) लिबरल फ़ेमिनिज़्म (Liberal Feminism)

लिबरल फ़ेमिनिज़्म का मक़सद मौजूदा समाजी और क़ानूनी ढांचों के अंदर रहते हुए औरतों को मसावी मौक़े फ़राहम करना है। इसके लिए क़वानीन और पॉलिसियों में इस्लाहात की जाती हैं ताकि औरतों को तालीम, मुलाज़िमत और सियासती शोबों में मर्द के बराबर हुक़ूक़ हासिल हों।

(2) रेडिकल फ़ेमिनिज़्म (Radical Feminism)

रेडिकल फ़ेमिनिज़्म पितृसत्ता (Patriarchy) को ज़ुल्म–ओ–जबर का बुनियादी निज़ाम क़रार देता है। ये नज़रिया इस बात पर ज़ोर देता है कि जब तक पितृसत्ता

को मुकम्मल तौर पर ख़त्म नहीं किया जाता, औरत हक़ीक़ी आज़ादी हासिल नहीं कर सकती।

(3) सोशलिस्ट फ़ेमिनिज़्म (Socialist Feminism)

ये नुक्ता–ए–नज़र सरमायादाराना निज़ाम को जिंसी अदम–मसावात की असल जड़ समझता है। सरमायादारी में ताक़त और वसाएल ज़्यादातर मर्दों के पास होते हैं जिसके नतीजे में औरतें पसमांदगी का शिकार रहती हैं। लिहाज़ा औरतों की आज़ादी के लिए एक सोशलिस्ट इंक़लाब नागुज़ीर समझा जाता है।

(4) कल्चरल फ़ेमिनिज़्म (Cultural Feminism)

कल्चरल फ़ेमिनिज़्म औरत की उन खुसूसियात को मुसबत अंदाज़ में उजागर करता है जो मुआशरत के लिए फ़ायदामंद हो सकती हैं जैसे परवरिश, तआवुन और हमदर्दी। इसके मुताबिक़ अगर ये अक़दार ज़्यादा फ़रोग़ पाएं तो मुआशरा ज़्यादा पुर–अमन और बेहतर हो सकता है।

(5) इंटरसेक्शनल फ़ेमिनिज़्म (Intersectional Feminism)

ये नज़रिया इस बात पर ज़ोर देता है कि औरतों पर ज़ुल्म सिर्फ़ जिंस की बुनियाद पर नहीं होता बल्कि नस्ल परस्ती, तबाक़ाती इम्तियाज़ और दीगर अवामिल भी उनके साथ जुड़ जाते हैं। इसलिए मुख़्तलिफ़ पस–मंज़र रखने वाली औरतों के मसाइल को समझने के लिए इन तमाम अवामिल को यकजा देखना ज़रूरी है।

इस्लाम और फ़ेमिनिज़्म का तक़ाबुल

बुनियादः

फ़ेमिनिज़्मः औरत और मर्द को हर शोबे में मसावी हुक़ूक़ देना, ख़ास तौर पर तारीखी ना–इंसाफ़ियों को ख़त्म करना।

इस्लामः औरत और मर्द दोनों को इज़्ज़त, इंसाफ़ और उनके दायरे–ए–अमल के मुताबिक़ हुक़ूक़–ओ–फ़राएज़ देना। इस्लाम में बराबरी (Equality) की बजाए अद्ल (Justice) पर ज़्यादा ज़ोर है – यानी हर एक को उसके किरदार, फ़ितरत और ज़िम्मेदारी के लिहाज़ से हक़ मिले।

हुक़ूक़ की फ़राहमीः

फ़ेमिनिज़्मः अक्सर क़ानूनी और समाजी इस्लाहात के ज़रिए हुक़ूक़ देने की कोशिश करता है, चाहे वो मुआशरती या हयाती फ़र्क़ को नज़रअंदाज़ भी कर दे।

इस्लामः ने 1400 साल पहले से औरत को विरासत, महर, निकाह में रज़ामंदी, जायदाद रखने और कारोबार करने का हक़ दे रखा है। ये सब उस वक़्त हुआ जब दुनिया के ज़्यादातर मुआशरे औरत को जायदाद का हिस्सा समझते थे।

ज़िम्मेदारियां और किरदारः

फ़ेमिनिज़्मः अक्सर इस बात पर ज़ोर देता है कि औरत हर किरदार को मर्द की तरह अदा कर सकती है, हत्ता कि वो किरदार भी जो फ़ितरतन मुख़्तलिफ़ हैं।

इस्लामः फ़ितरत (Nature) और मुआशरती तवाज़ुन को मद्देनज़र रख कर औरत और मर्द के किरदार तय करता है। बेशक–ओ–शुबह औरत घर और ख़ानदान की बुनियादी मेमार है लेकिन तिजारत, तालीम, तिब और दीगर शोबों में भी हुनर आज़माई कर सकती है।

लिबास और आज़ादीः

फ़ेमिनिज़्मः औरत को मुकम्मल आज़ादी देने का क़ाइल है कि वो जैसे चाहे ज़िंदगी गुज़ारे, लिबास और तअल्लुक़ात में भी।

इस्लामः आज़ादी देता है लेकिन हुदूद और इख़लाक़ियात के साथ ताकि फ़र्द और मुआशरा दोनों महफ़ूज़ रहें मसलन परदा और हया का तसव्वुर।

तनक़ीदी पहलूः

फ़ेमिनिज़्म के बाज़ धारे मर्द को दुश्मन या ज़ालिम के तौर पर पेश करते हैं जबकि इस्लाम मर्द को औरत का मुहाफ़िज़ और ख़ैर–ख़्वाह क़रार देता है।

इस्लाम का मक़सद मसावात बराए इंसाफ़ है, जबकि फ़ेमिनिज़्म अक्सर मसावात बराए मसावात चाहता है चाहे वो फ़ितरत के ख़िलाफ़ हो।

खुलासाः

जहां फ़ेमिनिज़्म और इस्लाम दोनों औरत की इज़्ज़त, तालीम और हक़–ए–राय–देही पर मुत्तफ़िक़ हैं, वहीं आज़ादी और किरदार के मामले में इस्लाम एक मुतवाज़िन निज़ाम देता है, जबकि फ़ेमिनिज़्म में आज़ादी की कोई आख़िरी हद मुक़र्रर नहीं है।

फ़ेमिनिज़्म और इस्लाम के उसूलों में बुनियादी फ़र्क़ ये है कि फ़ेमिनिज़्म चाहता है औरत और मर्द के दरमियान (Competition) का तअल्लुक़ हो और इस्लाम चाहता है कि उनके दरमियान (Co-Operation) का तअल्लुक़ हो। इस्लाम चाहता है कि औरत और मर्द रफ़ीक़ बन कर रहें और फ़ेमिनिज़्म दोनों को एक दूसरे का 'फरीक़' बनाना चाहता है।

गज़्वात-ए-रसूल (स0अ0व0)

इन्सानियत के लिए एक नमूना

मुहम्मद अमीन हसनी नदवी

हुज़ूर (स0अ0व0) की बेअसत आलम-ए-इन्सानियत के लिए है, अल्लाह तआला ने आपको तमाम इंसानों के लिए रहमत बना कर भेजा है: (वमा अरसलनाका इल्ला रहमतन लिल आलमीन)

आप की रहमत पेड़-पौधों के लिए भी, बेजान चीज़ों के लिए भी है और इंसानों व जानवरों के लिए भी। इसी रहमत का ख़ास्सा था कि इंसानों को आप के ज़रिए रहमत का, शफ़क़त का, उन्सियत का, प्यार व मोहब्बत का सबक़ मिला।

जंग एक ऐसा अमल है जिसमें इंसान मोहब्बत और नर्मी भूल जाता है। यह मिसाल दी जाती है कि जंग में सब कुछ जायज़ है जो चाहो करो, जिस तरह भी दरिंदगी, सफ़्फ़ाकियत और क़त्ल-ओ-ग़ारतगरी का मौक़ा मिले उसको जाने मत दो, मग़्रिबी तहज़ीब इसी की अलमबरदार है।

सलीबी जंगों में जिस तरह ज़ुल्म-ओ-सितम की आग भड़काई गई, क़त्ल-ओ-ख़ूंरेज़ी, आतिशज़नी, लूटमार, इस्मतदरी, हर किसी को तह-ए-तेग़ किया गया। न मर्दों को बख़्शा गया, न औरतों को, न ही बच्चों को, न ही बूढ़ों को, हर किसी को क़त्ल किया गया। सड़कें ख़ून से रंगीन हो गईं, बेरहमी से सबको मारा गया, यहां तक कि जब सलीबी फ़ातिहाना बैतुल-मुक़द्दस में दाख़िल हुए तो उनके घोड़े घुटनों तक ख़ून में डूबे हुए थे, बच्चों की दोनों टांगें चीर दी गईं, माओं से बच्चों को छीन कर मारा गया, यहां तक कि दूध पीते बच्चों तक को नहीं बख़्शा गया।

पोप निकोलस ने 1455 ई0 को एक हुक्मनामा जारी किया जिसमें साफ़ हिदायात दी गईं, उसमें उसने कहा:

"हमला करो, ढूंढ निकालो, क़ैद करो, तबाह करो और सभी मुसलमानों, मुश्रिकों और ईसा मसीह के हर एक दुश्मन को सरनिगूं कर दो, वो चाहे जहां और जिस हाल में हों और उनकी बादशाहत, हुकूमत, इलाक़े और इमलाक चाहे क़ाबिल-ए-नक़ल-ओ-हरकत हों या न हों, उन पर क़ब्ज़ा करो, उनकी तादाद को घटा कर हमेशा के लिए ग़ुलाम बना लो।"

1914 में पहली जंग-ए-अज़ीम हुई जो चार साल तक चली। 90 लाख फ़ौजी और 70 लाख आम शहरी इस जंग में मारे गए और पचास लाख आम शहरी भूख और बदतरीन हालात का शिकार हुए और अपनी जान से हाथ धो बैठे।

फ़्रांस में जम्हूरी इन्क़िलाब बरपा हुआ और जब फ़र्दन-फ़र्दन इंसानों को क़त्ल करना मुमकिन न हुआ तो गुलोटिन ईजाद करना पड़े जो एक वक़्त में बीसियों इंसानों के सरों को नारियलों की तरह उड़ा देती थीं। इस जम्हूरी इन्क़िलाब ने मुअर्रिख़ीन के अंदाज़े के मुताबिक़ 26 लाख इंसानों को गुलोटिन की भेंट चढ़ा दिया।

रूस में इश्तराकी इन्क़िलाब (सोशलिस्ट क्रान्ति) ने एक करोड़ से ज़्यादा इंसानों को क़त्ल-ओ-ग़ारतगरी और बर्फ़ानी क़ैदख़ानों के हवाले कर दिया। मौलाना अब्दुल-माजिद दरियाबादी (रह0) ने इस हक़ीक़त से परदा उठाया। वो लिखते हैं: "बर्तानिया के फ़ौजी अफ़सरों की निगाह में अपने सिपाहियों की वक़्अत बस महज़ "ग़िज़ा-ए-तोप" की थी। जंगों में अंग्रेज़ अफ़सर अपनी तक़रीरों में ये बातें करते थे: "अपनी इंसानियत-ओ-शराफ़त को भुला दो, दिलों को पत्थर बना लो, मौत-ओ-ज़िंदगी की तरफ़ से बहरे हो जाओ, ये जंग है जंग।"

हिंदुस्तानी मुअर्रिख़ प्रोफ़ेसर अमरीश मिश्रा अपनी तहक़ीक़ी किताब; "वॉर ऑफ़ सिविलाइज़ेशन इंडिया दि रोड टू डेल्ही" 1857 ईसवी में तारीख़ी शवाहिद-ओ-दस्तावेज़ात और सरकारी आदाद-ओ-शुमार की बुनियाद पर लिखता है: "अंग्रेज़ों ने 1857 में दस मिलियन (एक करोड़) हिंदुस्तानियों को मौत के घाट उतार दिया और ये सब के सब बेगुनाह थे, इनका क़सूर सिर्फ़ ये था कि उन्होंने मुल्क की आज़ादी की ख़ातिर बर्तानवी साम्राज्य के ज़ुल्म-ओ-तशद्दुद के ख़िलाफ़ तहरीक शुरू की थी लेकिन सफ़्फ़ाक अंग्रेज़ों ने अपने इक़्तिदार की हिफ़ाज़त-ओ-बक़ा की ख़ातिर बेगुनाह हिंदुस्तानियों (मुसलमान व हिंदू) को बेरहमी से क़त्ल कर दिया और ये

खूनी सिलसिला 1857 से 1867 तक जारी रहा।"

इंफ़िरादी तौर पर जो जुल्म–ओ–सितम कलीसा ने ढाया था। वो भी अपनी मिसाल आप है, ज़िंदा इंसानों को आग में झोंक दिया जाता था और अधजली हालत में निकाल कर मरने के लिए छोड़ दिया जाता। मर्दों और औरतों को बांध कर चिमनी में लटका दिया जाता और नीचे आग लगा दी जाती ताकि वो आग में तप कर और धुएं में घुट कर तड़प तड़प कर मर जाएं। पूरे जिस्म में सुइयां चुभोई जातीं, ज़ंजीर में बांध कर हल्की आग में भूना जाता, ज़मीन पर लिटा कर कुल्हाड़ी या लोहे से उसकी कमर तोड़ी जाती, फिर उसे तड़पने के लिए छोड़ दिया जाता ताकि वो मर जाए।

यह सिलसिला ख़त्म नहीं होता बल्कि क़त्ल–ओ–ग़ारतगरी के नए नए तरीक़े ईजाद हुए, अब बमों से, मिसाइलों से और ड्रोन हमले करके मुल्कों को ताराज किया जा रहा है। इराक़, लेबनान, लीबिया, शाम, अफ़ग़ानिस्तान और इसी तरह फ़िलिस्तीन को मलबे का ढेर बना दिया गया और इंसानों के साथ दरिंदगी का मुज़ाहिरा किया जा रहा है।

मौजूदा दौर में अमरीका की पुश्तपनाही के साथ बल्कि यूरोप की सरपरस्ती में इस्राईल की नाजायज़ हुकूमत ने फ़िलिस्तीनियों पर जो मज़ालिम ढाए हैं न उनके बच्चों को बख़्शा जा रहा है। न औरतों पर रहम किया जा रहा है, न ही बूढ़ों पर, मग़रिब ने दरिंदगी का जिस तरह मुज़ाहिरा किया है बल्कि मुसलसल कर रहा है। तारीख़–ए–इंसानी में इससे बढ़कर कुछ नहीं और तरफ़ा तमाशा कि यही अक़वाम अपने को अमन–ए–आलम का ठेकेदार बताती हैं, हुक़ूक़–ए–इंसानी का पासबां कहती हैं।

इसके बरख़िलाफ़ नबी करीम (स0अ0व0) ने जंग के मौक़े पर जो उसूल–ओ–हिदायात अता की हैं वो भी मुलाहिज़ा फ़रमा लें: "नबी करीम (स0अ0व0) का क़ायदा था कि आप (स0अ0व0) औरतों, बच्चों और बूढ़ों को क़त्ल करने से मना फ़रमाते थे। जब सरिया भेजते तो उन लोगों को ताकीद कर देते कि मुनकिरीन–ए–ख़ुदा को क़त्ल करना हो तो मुसला न करो यानी उनके जिस्म के अज़ा को न बिगाड़ो। कुफ़्फ़ार से जब कुछ मुआहिदा करो तो बदअहदी न करो। औरतों, बच्चों और बूढ़ों को क़त्ल न करो, आप (स0अ0व0) ये भी हुक्म देते कि जिस बस्ती या क़बीला से अज़ान की आवाज़ सुनी जाए या इस्लाम की कोई अलामत मालूम हो, वहां हमला न किया जाए और जो शख़्स कलमा पढ़ लेता गो उसने तलवार के ख़ौफ़ ही से पढ़ा हो उसको क़त्ल करने से मना फ़रमाते थे। नबी करीम (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) ने ग़ज़वा–ए–हुनैन में अपने असहाब व रूफ़क़ा को हुक्म दिया कि किसी बच्चे, औरत, मर्द या ग़ुलाम जो काम–काज के लिए हो हाथ न उठाया जाए, आप (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) ने एक औरत के क़त्ल पर जो हुनैन में मारी गई अफ़सोस का इज़हार किया। नबी करीम (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) की इस आला तरीन तालीम–ओ–तरबियत ही का असर था कि ख़ुल्फ़ा–ए–राशदीन के अहद में अगरचे इराक़ व शाम, मिस्र व अरब और ईरान व ख़ुरासान के सैकड़ों शहर फ़तेह किए गए मगर किसी जगह भी हमला–आवरों, जंग–आज़माओं, या रआया के साथ इस तरह की सख़्ती और ज़्यादती का बर्ताव नहीं मिलता जो इस ज़माने की जंगों में राइज़ था, मगलूब दुश्मन से तावान–ए–जंग लेने का भी कहीं इंदिराज नहीं मिलता।

हज़रत मौलाना सैय्यद मुहम्मद राबेअ हसनी नदवी (रहमतुल्लाह अलैह) लिखते हैं: "मुसलमानों की जंगों को मुसलमानों का ज़ालिमाना अमल कहने वालों के सामने ये हक़ीक़त वाज़ेह करने की है कि तमाम जंगों में जो इंसानी रवादारी और हुस्न–ए–अख़्लाक़ का मामला रहा, उसका दूसरे मज़हबों और तमद्दुनों के दरमियान होने वाली जंगों में पेश आने वाले हालात से मुवाज़ना किया जाए तो हैरतनाक नमूना सामने आता है। इस्लाम के अलावा कोई भी मज़हब, कोई भी क़ौम, कोई भी मुआशरा, सोसाइटी और अमन के लिए कोशां कोई इदारा आज तक इस तरह का अमन–पसंदी और हक़–तलबी का इन्क़िलाब बरपा नहीं कर सका और ये इन्क़िलाब भी ऐसा इंसानी इन्क़िलाब था कि उसके नतीजे में हुज़ूर (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) ने ऐसे निज़ाम की बुनियाद रख दी जिसकी बरकात सदियां गुज़र जाने के बाद भी इंसानी सीनों में महसूस की जा सकती हैं।"

मग़रिबी तहज़ीब जुर्म, तशद्दुद, ख़ूंरेज़ी और सफ़्फ़ाकी पर मुब्नी है। यह तहज़ीब अपने मक़ासिद की तकमील के लिए किसी भी हद तक जाने को तैयार है। अगर इस तहज़ीब से इंसानी मुआशरा को बचाना है तो वो इस्लामी सिफ़ात पैदा करनी होंगी जो क़ुरून–ए–अव्वल में सहाबा–ए–किराम (रज़ियल्लाहु अन्हुम) ने आप (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) की सोहबत में रह कर पेश की थीं, इस्लामी इक़दार, इस्लामी इख़्लाक़ और इस्लामी निज़ाम–ए–ज़िंदगी को पेश करना होगा। अगर इंसान ये चाहता है कि उसका ख़ानदानी निज़ाम बाक़ी रहे तो उसको इस्लामी निज़ाम को अपनाना होगा।

रसूलुल्लाह (स०अ०व०) की विदेश नीति

मोहम्मद नज्मुद्दीन नदवी

रसूलु अल्लाह (ﷺ) की सियासी ज़िंदगी सीरत–ए–नबवी का एक अहम–ओ–बुनियादी उन्सुर है, सियासत के माने में इस्लाह–ओ–दुरुस्ती का हक़ीक़ी पहलू पिन्हा है। इस लफ़्ज़ के माने में ज़ात, मुआशरा और हुकूमत की इस्लाह की सिफ़तें पाई जाती हैं। यही वो वजह है कि जिसकी असास पर हदीस में इरशाद हुआ है:

"बनी इसराइल की हुक्मरानी व क़यादत पैग़ंबर फ़रमाते थे, जब कोई पैग़ंबर वफ़ात पा जाता तो उसकी जगह दूसरा आ जाता, बेशक मेरे बाद कोई नबी नहीं, अलबत्ता ख़ुलफ़ा होंगे।" (जामेअ अल–बुख़ारी: 3284)

हुज़ूर (ﷺ) की सियासी फ़िक्र–ओ–नज़र की फ़हम–ओ–इदराक की ख़ातिर दीगर निज़ाम हाए सियासत पर एक उचकती नज़र भी काफ़ी है कि ईसाईयत में दीन और सियासत के बीच में तफ़रीक़–ओ–इम्तियाज़ की दीवार हायल कर दी और दीन–ओ–सियासत के आपसी रिश्ते में बिल्कुल तफ़रीक़ डाल कर बे–तअल्लुक़ कर दिया और ये नज़रिया–ए–हुकमरानी दिया कि ख़ुदा और क़ैसर के हुक़ूक़ अलग–अलग हैं, बाइस सबब "क़ैसर का जो हिस्सा है वह क़ैसर को दो अल्लाह को जो हिस्सा है वह अल्लाह को दो" में वो नज़रिया साफ़ झलक रहा है। इसके बर–अक्स इस्लाम का तसव्वुर–ए–हुक्मरानी जिसे अल्लाह के रसूल (ﷺ) ने मुतारिफ़ कराया कि ज़मीन का मालिक–ओ–हाकिम अल्लाह है और इंसान की हैसियत सिर्फ़ अमीन और ख़लीफ़ा की है। अल्लाह के रसूल ने पूरा एक सियासी निज़ाम दिया। इस सिलसिले में भी ज़ात–ए–कुदसी सिफ़ात उस्वा–ए–हसना है। तेरह साल मक्का में दुश्मन–ए– दीन–ए–मतीन के दरमियान रह कर किसी भी सियासी सरगर्मी में हिस्सा नहीं बने बल्कि मक्का मुकर्रमा में दावती मुहिम में शब–ओ–रोज़ हमा–तन मसरूफ़ रहे। लोगों को इस्लाम का जांफ़िज़ा पयाम सुनाते रहे और उसके बाद मदीना में आकर आप (ﷺ) ने रियासत–ए–मदीना की बिना डाली फिर दस साल रियासत के हाकिम व सरबराह–ए–आला की हैसियत से हुकूमत फ़रमाई और नया और पाइदार इन्क़िलाब बरपा कर दिया। दुनिया–ए–इंसानियत को एक हमा–गीर–ओ–सालेह और रहनुमा आलमी निज़ाम–ए–हुक्मरानी से मुतारिफ़ कराया और उसको अमली शक्ल में पेश करके इस निज़ाम को अपनाना आसान कर दिया।

इन्क़िलाब–ए–नबवी का असासी मक़सद इक़ामत–ए–दीन है। इसी इन्क़िलाब से निज़ाम हाए बातिल और तमाम अद्यान–ए–आलम पर सियासी फ़तह–ओ–ग़लबा (Political Power) हासिल होता है जिसका असर मुआशी निज़ाम मुस्तहकम और मुआशरती तहफ़्फ़ुज़ की शक्ल में ज़ाहिर होता नज़र आता है क्यों कि इनकी असास दीन–ओ–मज़हब है। सियासी–ओ–मुआशी और मुआशरती इंक़लाब से गुरेज़ होकर दीनी–ओ–मज़हबी इंक़लाब लाया जाए तो उसमें इस्तिक़लाल–ओ–दवाम का पहलू खो कर देरपा नहीं हो सकता। यही हाल उस वक़्त भी होता है जब इसके बर–अक्स हो, इस सूरत में बड़ी नाहमवारी और मुआशरती तबक़ात पर ज़ुल्म–ओ–जबर का साया दूर तक रहता है और असर–ओ–रसूख़ में कोई पाएदारी नज़र नहीं आती। तारीख़ में इसकी मिसालें मिलती हैं, सीरत–ए–नबवी में हमें पूरी रहनुमाई मिलती है कि नबवी मुआशरा की तश्कील और आदिलाना सियासी निज़ाम को बरपा करके नबी (ﷺ) ने सियासी ज़ुल्म–ओ–जबर, मआशी दबाव और इस्तिबदाद, मुआशरती उतार–चढ़ाव और नाहमवारी का ख़ात्मा किया। सियासी इन्क़िलाब–ए– नबवी के ज़रिए हुक़ूक़ की आज़ादी हासिल हुई, नबी (ﷺ) ने हिजरत–ए–मदीना के पहले रियासत की बिना डाली, फ़िक्र–ओ–अमल में एक इन्क़िलाब बरपा कर दिया और इसमें नबी (ﷺ) के सियासी किरदार की हमागीरी ने नुमाया होकर जहान–ए–आब–ओ–गिल को दिखला दिया कि निज़ाम–ए–सियासत क्यूंकर हो।

सियासत के दाख़िली उमूर की जहां अहमियत और उसकी फ़िक्र नागुज़ीर है वहीं उमूर–ए–ख़ारिजा पर भी फ़िक्र–ओ–अमल मुल्क–ओ–रियासत की सालमियत की ख़ातिर ज़रूरी है। यही वजह है कि मदीना में इस्लामी रियासत का आग़ाज़ हुआ तो इसी रियासत में पुर–अमन बक़ा–ए–बाहमी के तईं तहरीर मुआहिदा दीगर अद्यान–ओ–मज़ाहिब के मुत्तबेईन (Followers) के माबैन हुआ। तारीख़–ओ–सीरत में जो "मीसाक़–ए–मदीना" (Charter of Madinah) के नाम से जाना गया है। इसी तरह सुल्ह–ए–हुदैबिया भी निहायत अहम मुआहिदा और पुर–अमन बक़ा–ए–बाहमी की हिकमत–आमेज़ पॉलिसी है, जिसे बाज़ सीरत निगारान ने "अहद–ए–नबवी की सियासत–ए–ख़ारिजा का शाहकार" क़रार दिया है, इनमें और सरबराहान–ए– आलम और शाहान–ए–हुकूमत के नाम ख़ुतूत–ओ– मकातीब–ए–नबवी में ख़ारिजी–ओ–दाख़िली सियासत और बैनुल–अक़वामी तअल्लुक़ात–ओ– फ़ारतकारी के अहम–ओ–बुनियादी उसूल और तरीक़ा–ए–कार मौजूद हैं जो इस्लामी रियासत की फ़िक्री–ओ–अमली बुनियादों के लिए संग–ए–मील हैं।

ख़ारिजी सियासत (Foreign Policy) का एक अहम पहलू और बुनियादी हिकमत–ए–अमली (Strategy) खुदा की ज़मीन पर इलाही दीन का ग़लबा–ओ–तसल्लुत है। कुरान पाक में इरशाद हुआ है:

"वही वो ज़ात है जिसने अपने रसूल को हिदायत और दीन–ए–हक़ के साथ भेजा ताकि उसको हर दीन पर ग़ालिब कर दे।"

बाएं वजह इसकी बरतरी–ओ–ग़लबा के हुसूल में माद्दी और मअनवी ताक़त का इस्तेमाल भी हुआ, ताकि रूए–ज़मीन पर खुदा–ए–यकता–ओ–तन्हा की खुदाई हो और अल्लाह के बाग़ी सरनिगूं हों और अज़्मत–ओ–इज़्ज़त से ज़ीस्त का हक़ हासिल न हो, क्योंकि इरशाद–ए–इलाही है:

"यहां तक कि वो (अपने) हाथ से जिज़्या दें इस हाल में कि वो बे–हैसियत हों।"

इस अज़ीम मक़सद के हुसूल की ख़ातिर अमली जद्द–ओ–जहद, जंग–ओ–मारिका तवील–ओ–सब्र–आज़मा सिलसिला वजूद में आया जिससे मुसलमानों की रगों में खून गर्माता रहा है।

नबी (ﷺ) की सियासी ज़िंदगी में ख़ारिजी पॉलिसी पर और नज़र डाली जाए तो वहां मुआहिदा शिकनी और हुक्म–अदूली के ख़िलाफ़ लाइहा–ए–अमल और पॉलिसी मौजूद है। मुआहिदा की पासदारी पर अहले–ईमान कारबंद रहे, लेकिन अगर फ़रीक़–ए–सानी की जानिब से मुआहिदा शिकनी और हुक्म की पामाली पाई गई तो उस पर आप (ﷺ) ने रद्द–ए–अमल और जवाबी कार्यवाई की। यहूदियों का सबसे बड़ा मरकज़ अहद–ए–नबवी में मदीना और ख़ैबर है जहां यहूदियों के मुतअद्दिद क़बाइल आबाद थे, मगर यहूद–ए–यसरब की जिलावतनी उनके हुक्म–अदूली की बिना पर हुई, यहूद–ए–ख़ैबर को मुआहिदा–ए– अमन–ओ–अमान पर बरक़रार रखा गया, यहां तलमूदी क़ानून की बालादस्ती (हुकूमत) थी, किताब "मुहम्मद एंड द ज्यूज़" (उर्दू) में तस्रीह मिलती है।

सियासत–ए–ख़ारिजा की एक अहम पॉलिसी हमें सीरत–ए–नबवी में मिलती है और कुरान में उसकी शरह दस्तयाब है कि हिजरत के बाद मुसलमानों और अहले–मक्का के माबैन मारिका–ए–हक़–ओ–बातिल ग़ज़वा–ए–बद्र पेश आया जो पहला मुक़ाबला था। इसमें तीन सौ तेरह मुसलमानों ने नबी (ﷺ) की सर–करदगी में सख़्त तरीन मुक़ाबले में अहले–मक्का को बुरी शिकस्त दी, जिसमें मक़्तूलीन–ए–मक्का की तादाद सत्तर से कम नहीं थी। इलावा इसके इतनी ही तादाद में सत्तर आदमी असीर होकर मदीना लाए गए, उनके साथ आला तरीन अख़्लाक़ी बर्ताव व सुलूक किया गया। असीरान–ए–बद्र तीन तीन चार चार करके सहाबा को हवाले किए गए, उन्होंने उन क़ैदियों के साथ अपनों सा बर्ताव किया। बाज़–बाज़ क़ैदियों की सरगुज़श्त अहादीस और तारीख़–ओ–सीरत की किताबों में मिलती हैं, जिन लोगों ने शुअब–ए–अबी तालिब में नबी (ﷺ) और उनके असहाब को महसूर रखा और इतना परेशान किया सताया कि तर्क–ए–वतन करने पर मजबूर हो गए उनके साथ ऐसा मामला एहसान का किया कि चश्म–ए–फ़लक ने कभी नहीं देखा कि फ़ातिह हुकमरां कह रहा हो कि:

"आज तुम पर कोई और किसी क़िस्म की ज़बरदस्ती नहीं, जाओ कि तुम सब आज़ाद हो।"

नबी (ﷺ) ने दीगर फ़ातिह हुकमरानों की तरह फ़तह–ओ–कामयाबी के वक़्त ग़ैज़–ओ–ग़ज़ब और क़त्ल–ओ–ग़ारतगरी के बजाए आला अख़्लाक़ी किरदार और नरमदिली का मुज़ाहिरा फ़रमाया। यक़ीनन ये

तारीख़–ए–आलम का अरमुग़ान–ए–नायाब है जिसकी मिसाल दुनिया आज तक पेश नहीं कर सकी और न कर सकती है। यहां इस बात का इज़हार ग़ैर मुनासिब नहीं कि नबी (ﷺ) की तेईस साला कारवान–ए–हयात में मक्की ज़िंदगी हो या मदनी दोनों में मुख़ालिफ़ीन और दुश्मनों के लिए अलग उसूल नहीं मिलते बल्कि यकसां नज़र आते हैं। नरम मिज़ाजी और मुदारात का मामला रहा, गरचे कहीं मसलहत की ख़ातिर कोई दूसरी सूरत नज़र आए और ये कि नबी (ﷺ) पर जंग मुसल्लत न की जाती तो सुल्ह और मुआहिदों के ज़रिए हिफ़ाज़ती तदबीर की जाती। जब किसी तरह कोई शक्ल निकलती नज़र न आती तो इस्लामी रियासत की बक़ा और मुस्लिम उम्मा के तहफ़्फ़ुज़ के तईं दिफ़ाई पोज़िशन (Defensive Position) अख़्तियार फ़रमाई।

बहरहाल नबी (ﷺ) ने एक ऐसा निज़ाम–ए–हुकमरानी क़ायम कर दिया जो नमूना और मिसाली था। डॉक्टर हामिद उल्लाह ने लिखा है किः "जिसमें कभी कोई हुकूमत क़ायम नहीं हुई थी, उसमें पैदा होने और परवरिश पाने के बावजूद आन हज़रत (ﷺ) ने जो दस्तूर–ए–ममलकत मुरत्तब किया और जो निज़ाम–ए–हुकमरानी क़ाइम फ़रमाया, उस पर अमल दुनिया की अज़ीम–उश्शान मम्लकत के लिए न सिर्फ़ हर तरह कारामद व काफ़ी साबित हुआ बल्कि जब तक उस पर अमल रहा, वो दुनिया की तहज़ीब तरीन हुकूमत बनी रही।" (रसूल–ए–अकरम की सियासी ज़िंदगीः 15, मतबूआ दिल्ली)

और अअ्दा–ए–इस्लाम गवाही देने पर मजबूर हैं कि "नबी (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) की सियासी कामयाबी एक मोजिज़ा (Miracle) मालूम होता है।" अमरीकी राइटर माइकेल हार्ट ने सबसे ज़्यादा दुनिया के सौ बा–असर अफ़राद की फ़ेहरिस्त में अव्वलीन जगह "रिसालत मआब ﷺ" के नाम मुबारक रख कर इसका सबब यही बतायाः "यह वाहिद तारीखी हस्ती है जो मज़हबी और दुनियावी दोनों महाज़ों पर बराबर तौर पर कामयाब रही... वो एक इंतिहाई मुअस्सिर सियासी रहनुमा भी साबित हुए, आज तेरह सौ बरस गुज़र जाने के बावजूद उनके असरात इंसानों पर हनूज़ मुस्लिम और गहरे हैं।"

(सौ अज़ीम आदमीः 25, लाहौर)

सीरत रसूले अकरम (स0अ0व0)

हाफ़िज़ मोहम्मद आदिल हसनी

हज़रत मुहम्मद मुस्तफ़ा (स0अ0व0) अल्लाह तबारक व तआला के आख़िरी नबी और रसूल हैं। आप (स0अ0व0) की विलादत मक्का–ए–मुकर्रमा में १२ रबीउल अव्वल को हुई। आप (स0अ0व0) का ताल्लुक़ क़ुरैश के मशहूर ख़ानदान बनू हाशिम से था। वालिद का अब्दुल्लाह और वालिदा का नाम आमिना था। वालिद की वफ़ात आप (स0अ0व0) की पैदाइश से पहले हो गई थी और जब आप छः बरस के हुए तो वालिदा भी इन्तिक़ाल फ़रमा गईं। यतीमी की हालत में दादा अब्दुल मुत्तलिब और फिर चचा अबू तालिब ने आपकी परवरिश की। हुज़ूर (स0अ0व0) ने हमेशा सच्चाई, दयानतदारी और अच्छे अख़्लाक़ का मुज़ाहिरा किया। मक्का के लोग आप (स0अ0व0) को सादिक़ और अमीन के लक़ब से याद करते थे। चालिस बरस की उम्र में आप (स0अ0व0) पर अल्लाह की तरफ़ से वही नाज़िल हुई और आपको नुबूव्वत अता की गई। आप (स0अ0व0) ने लोगों को तौहीद, अद्ल, भाईचारे और अख़्लाक़े हस्ना की दावत दी। कुफ़्फ़ारे मक्का ने आप (स0अ0व0) की बहुत मुख़ालिफ़त की, तरह–तरह से आप (स0अ0व0) को तकलीफ़ें पहुंचाई लेकिन आप (स0अ0व0) ने सब्र और हिकमत से दीने इस्लाम पहुंचाया और देखते–देखते अरब की सरज़मीन तौहीद व रिसालत के नारों से गूंजने लगी। लोग हिदायत और अब्दी कामयाबी से हमकिनार होने लगे और उनकी क़ुर्बानियों से दीने इस्लाम अरब से निकलकर अजम पहुंचा और उसकी किरनों से पूरी दुनिया रोशन हो गई। हम सीरत रसूले अकरम (स0अ0व0) से अपनी ज़िन्दगी बनाने के पाबन्द हैं। ख़ुदा हमें तौफ़ीक़ से नवाज़े। आमीन!

की मुहम्मद से वफ़ा तूने तो हम तेरे हैं
यह जहां चीज़ है क्या लौह–ओ–क़लम तेरे हैं

रसूलुल्लाह (स०अ०व०)
का पैग़ाम

मुहम्मद मुसअब नदवी बारह बन्कवी

रबीउल अव्वल का मुबारक महीना शुरू हो रहा है, साढ़े चौदह सौ साल हुए इसी माह की १२ तारीख़ (कुछ सीरत की किताबों के मुताबिक़ 9 तारीख़) अरब के तपते हुए सहरा में, हाशमी घराने में, आफ़ताबे रिसालत, नबी उम्मी (स0अ0व0) का ज़हूर हुआ। इस से ज़्यादा मुबारक और मुक़द्दस वाक़्या रुये ज़मीन पर कभी भी पेश नहीं आया, क्योंकि हज़रत ईसा मसीह (अलैहिस्सलाम) को दुनिया से रुख़सत हुए साढ़े पाँच सौ साल गुज़र चुके हैं। इंसानियत बग़ैर किसी हादी व रहनुमा के गुमराही के दलदल में फँसी हुई है। माबूदे हक़ीक़ी के दरबार से जबीने हट चुकी हैं। किसी एक मुल्क की क़ैद नहीं, मश्रिक़ से लेकर मग़्रिब तक, शुमाल से लेकर जुनूब तक सारे आलम में फ़साद बरपा है। दुनिया (ख़ुश्क़ी और तरी में फ़साद फैल गया है) की तस्वीर बनी हुई है। फ़साद भी ऐसा कि क्या मुहज़्ज़ब, क्या ग़ैर मुहज़्ज़ब, क्या पढ़ा–लिखा, क्या अनपढ़, हर मुल्क, हर तबक़ा ज़ालिम बना हुआ है। ख़ून पानी से ज़्यादा अरज़ां है, इंसानी जान बे–वक़अत हो चुकी है, दिल पत्थर से ज़्यादा सख़्त हैं, (पस वह पत्थर की मानिन्द हैं या उससे ज़्यादा सख़्त हैं) के मुस्दाक़ बने हुए हैं। क़रीब है कि इंसानियत ख़ुद अपने आप को तबाह व बर्बाद कर ले, जिस को क़ुरआन करीम ने (और तुम आग के गढ़े के किनारे पर थे) कह कर बतलाया है।

अख़्लाक़ी ज़वाल का यह आलम कि सारे समाज से बदबू फूट रही है। तारीख़–दानों ने उस वक़्त के मंज़रनामे पर बहुत कुछ लिखा है। उसी मंज़र को इफ़रात व तफ़रीत से पाक क़ुरआन मजीद ने एक जुम्ले में बयान किया: "बस खुली हुई गुमराही में मुब्तला थे।" यह हालत कुल आलम की है, सारा जहान बीमार है, मगर सरज़मीन अरब कैंसर के मर्ज़ में मुब्तला है।

उस वक़्त दर्द का दरमाँ करने के लिए, मरी हुई इंसानियत को फिर से ज़िंदा कर देने के लिए, तारीकी में भटके हुए को राह–ए–मुनव्वर दिखाने के लिए उस मसीह–ए–कामिल, रहबर–ए–हक़नुमा (स0अ0व0) का ज़हूर होता है, जिस के इंतज़ार में हज़ारहा बरस से अरज़ व फलक अपनी आँखें खोले हुए थे। जिस के लिए बज़्मे काइनात आरास्ता की गई थी। जिस की ख़ातिर कौनो–मकाँ की तख़्लीक़ हुई थी। जिस को वजूद में लाने के लिए चाँद को चाँदनी, आफ़ताब को चमक, सितारों को हुस्न और सैयारों को गर्दिश मिली।

जिस की वजह से क़ौस–ओ–क़ुज़ह को रंगत, शबनम को ठंडक, फूलों को निकहत, कलियों को नज़ाकत बख़्शी गई। जिस के लिए पानी को रवानी, हवाओं को ख़ुनकी, सुबह को रौशनी, शफ़क़ को लालिमा, शाम को सकून अता किया गया। जिस के वजूद के बाइस पहाड़ों को हैबत, सेहराओं को वुसअत, समंदरों को सुकूत, मौजों को बे–क़रारी और काइनात को हुस्न–ओ–जमाल से नवाज़ा गया।

यानि कि वो ख़ुलासा–ए–काइनात, शाने–अरब, फ़ख़्रे–अजम, सरवर–ए–ज़ी–हशम, अब्दुल्लाह का बेटा, आमिना का लाल, अहमद मुज्तबा, मुहम्मद मुस्तफ़ा (स0अ0व0) मक्का के एक शरीफ़ घराने, बीबी आमिना की गोद में इज़्ज़त व जलाल के साथ तशरीफ़ फ़रमा हुए। नूर अला नूर की नूरानी फ़ज़ा क़ायम हुई। सितारे बामे–फ़लक से गोया क़दम–बोसी को झुके, सारा आलम सिमट कर सामने आ गया, ज़र्रा–ज़र्रा रोशन हो उठा। बंजर ज़मीन लहलहा उठी। आतिशे–अजम बुझ गई। माबूदाने–बातिला की इज़्ज़तें पामाल हो गईं। लात व उज़्ज़ा की अज़्मतें लुट गईं। बुतकदों में ख़ाक उड़ने लगी। क़ैसर–ओ–किसरा के ऐवानों में ज़लज़ला बरपा हुआ।

अब हक़ का पैग़म्बर, हादी–ए–इंस व जाँ, सैयदुल–अंबिया, रहमतुल–लिल आलमीन (स0अ0व0) तशरीफ़ ले आए हैं।

चालीस साल की उम्र होने पर नुबुव्वत का ऐलान हुआ। इस नबी–ए–मुकर्रम की दावत से सिसकती और

दम तोड़ती इंसानियत को एक नई ज़िंदगी मिली। भटके हुए लोगों को ज़िंदगी का मक़सद और जीने का सलीक़ा मिला, बे–क़रार दिलों को क़रार आया। ग़म की मारी हुई दुनिया को सकून मिला। सारे आलम पर रिअफ़त व रहमत की चादर तनी। जिस की लाई हुई रौशन और पाकीज़ा तालीमात ने अरब व अजम को मुनव्वर कर दिया।

अब सवाल यह कि चौदह सौ बरस बाद क्या उम्मत अपने सरदार, हादी व रहनुमा की बतलाई हुई रौशन शाहराह पर गामज़न है या उस से हट कर ग़ैरों की बतलाई हुई तंग व तारीक़ गलियों में ठोकरें खाती फिर रही है?

क्या उम्मत पर उसके नबी की ज़िंदगी का कुछ शाएबा बाक़ी है? क्या आप (स0अ0व0) दुनिया में इस लिए तशरीफ़ लाए थे कि उम्मत फ़क़त आप का नाम लेकर जश्न मना ले और आप के अबदी व आफ़ाक़ी पैग़ाम को फरामोश कर बैठे?

हमारी तरक़्क़ी का राज़ महज़ ज़बान व बयान में नहीं बल्कि हमारे अमल में मुअम्मर है। अमल का मतलब ये है कि हम अपनी ज़िंदगी, अपने रसूले पाक (स0अ0व0) के उस्वा पर ढाल लें। हमारे नबी कभी झूट के क़रीब नहीं गए, हम भी सच्चे हो जाएँ। वो सादिक़ और अमीन थे, हम भी सच्चाई और अमानतदारी को अपना वस्फ़ बना लें। बदतमीज़ी और सख़्ती का उन के पास से गुज़र तक न हुआ, हम भी नरम दिल और नरम मिज़ाज हो जाएँ। वो उम्मत के ग़मख़्वार थे, इस के लिए हर वक़्त फ़िक्रमंद रहते थे, हम भी क़ौम व मिल्लत की इस्लाह व फ़लाह के लिए हर वक़्त तैयार रहें।

हम हर–हर मआमलात में (यक़ीनन तुम्हारे लिए रसूल की ज़ात में बेहतरीन नमूना है) से सबक़ हासिल करें। इसी नुस्ख़ा–ए–कीमिया में हमारी दुनिया व आख़िरत की कामयाबी का राज़ पिन्हाँ है।

रसूलुल्लाह (स0अ0व0) का मजलिसी दस्तूरुल अमल

मौलाना अब्दुल माजिद दरियाबादी (रह0)

"रसूलुल्लाह (स0अ0व0) की नशिश्त व बर्ख़ास्त ख़ुदा के ज़िक्र पर ही होती थी और जब आप (स0अ0व0) किसी मजमे में तशरीफ़ ले जाते तो जलसे ही के किनारे पर बैठ जाते और उसी का हुक्म फ़रमाते। आप (स0अ0व0) की मजलिस इल्म–ओ–हया की और सब्र व अमानत की मजलिस होती थी, न उसमें आवाज़ें बुलन्द होती थीं, न उसमें इज़्ज़तों पर हमले होते थे और न इसमें लोगों की कमज़ोरियों का प्रचार किया जाता था।

अपने रसूलुल्लाह (स0अ0व0) का मजलिसी दस्तूरुल अमल आपने सुन लिया? हर सोहबत ख़ुदा ही के ज़िक्र पर ख़त्म भी, आपकी "ज़िन्दादिली" और "शगुफ़्ता मिज़ाजी" आपको भी कभी इसकी इजाज़त देती है? आपको भी अपनी दोस्ताना और बेतकल्लुफ़ मजलिसों में कभी ज़िक्रे इलाही की फ़ुर्सत नसीब होती है? हुज़ूर (स0अ0व0) जब किसी मजमे में पहुंचते तो पास ही तशरीफ़ फ़रमाते थे और उसी की तलक़ीन दूसरों को फ़रमाते थे। आपने सुना? आपके सरवरे सरदार महज़ कौनेन के सरवरे सरदार जहां कहीं तशरीफ़ ले जाते, पेशवाई व इस्तिक़बाल के इन्तिज़ार में नहीं रहते थे, इसकी ख़्वाहिश नहीं फ़रमाते थे कि जिस तरह भी मुमकिन हो लोगों को हटाकर, धक्का देकर, सदर में जगह निकाली जाए, आपका अमल कभी भी इसके मुताबिक़ रहा है? कितनी दोस्तियां इस बात पर नहीं टूट चुकी हैं कि महफ़िल में आपके अंदाज़ व तमन्ना के मुताबिक़ आपकी आवभगत नहीं होती? और आगे सुनिये, हुज़ूर (स0अ0व0) की मजलिसे अमल व हया की मजलिस होती थी, न उसमें आवाज़ बुलन्द होती थीं, न लोगों की परदादरी होती थी, न किसी के ऐब ज़ाहिर किये जाते थे, न किसी पर आवाज़े कसे जाते थे, न किसी को बनाया जाता था, न भड़कते हुए लतीफ़े, न क़हक़हों और तालियों की गूंज, न किसी की दिल की आवाज़, न किसी की ग़ीबत, न किसी की चुग़ली, न किसी की परदादरी, न किसी की तहक़ीर, न किसी पर तारीज़! न यह उस पर फ़िक़रा चुस्त कर रहा, न उसे गुफ़्तगू में बन्द कर देने की फ़िक्र में है, न फ़िज़ूल गोई न अफ़साना ख़्वानी, न यह तज़किरे कि राजा साहब का इलेक्शन ख़ूब लड़ा, गामा पहलवान ने कुश्ती ख़ूब निकाली और न यह चर्चे कि मास्को में अबकी साल बर्फ़ ख़ूब पड़ी और लंका में एक अज़दहा भेड़ि को निगल गया।"

(सच्ची बातें: १७०–१७१)

दीन की दावत और नवीन मीडिया

अब्दुल अली हसनी नदवी

आशुफ़्ता सरों की इस दुनिया में बात हो रही है एक अलबेले शाहकार की जिसने एक जानिब बहस व तहक़ीक़, दावत व तब्लीग़ और इफ़ादा व इस्तिफ़ादा की राहों को इन्तहाई हमवार बना दिया है और इल्म व आगाही की मंज़िलों तक रसाई आसान कर दी है। जो काम एक अरसा पहले शदीद जुस्तजू, तफ़्तीश व तलब और तलाशे बिस्यार के बाद अंजाम पाता था वह घड़ी की चौथाई में बग़ैर किसी ख़ास तग़ो–दौ के पाया–ए–तक्मील को पहुँच जाता है। दो चार दफ़ा के क्लिक से मतलूबा मज़ामीन स्क्रीन पर नमूदार हो जाते हैं और घंटों का काम चुटकियों में तय पाता है। चुनांचे एक तरफ़ तो तन व मन की ये आसानियाँ हैं तो दूसरी तरफ़ इस राह–ए–परख़्तर की ख़ारदार झाड़ियाँ और रुतुब–ओ–याबिस का ऐसा तूमार है कि हुमा–शुमा की गुमगश्तगी यक़ीनी है। क्यूंकि भांति भांति के क़लमकार, ख़ुद–साख़्ता दानिशवर और इस्लाम की रूह से न–आशना दावा–दारान–ए–इस्लाम बेदरीग़ अपना–अपना मवाद इसमें झोंक रहे हैं। चुनांचे सतही इल्म के हामिल किसी फ़र्द का इस पर इनहिसार मोजिब–ए–तबाही है। अलबत्ता एक साहिब–ए–इल्म दाई इस ख़ारज़ार में अगर फूंक–फूंक कर क़दम रखे तो फ़रीज़ा–ए–दावत–ए–दीन के सिलसिले में इस छेल–छबीली और अलबेली इजाद से बक़द्रे ज़रूरत हज़ उठा सकता है। चुनांचे इस सिलसिले में सबसे बढ़कर कोशिश ये होनी चाहिए कि मसनूई ज़हांनत (Artificial Intelligence) के अहम–तरीन और मोअस्सर–तरीन ज़ैली प्लेटफ़ार्म और इसके चौट बॉट (Chatbot) चौट जी पी टी (Chat GPT) को वाफ़िर मिक़दार में ऐसा मुअतबर और मुस्तनद डेटा (Data) मुहैया किया जाए जो नई नस्ल की तश्कील–ए–ज़ेहनी में मुफ़ीद और कार–आमद रोल अदा कर सके। क्यूंकि ये बात अज़हर–मिनश्शम्स है कि नौख़ीज़ों की एक बड़ी खेप दीन को बराहे–रास्त अख़ज़ करने पर उतावली है और जाने–अंजाने में मसनूई ज़हांनत को अपना उस्ताद बना बैठी है। तो एक तरफ़ टेक्नोलॉजी के तईं इस मअहूद ज़ेहनी और हद से मुतजाविज़ मरऊबियत के सद्दे बाब के लिए ख़ातिर–ख़्वाह कोशिशें होनी चाहिए और मसनूई ज़हांनत के फ़वाएद व नुक़्सानात से उन्हें आगाह करना चाहिए, वहीं दूसरी जानिब ये बात भी ज़ेहन–नशीन होनी चाहिए कि मसनूई ज़हांनत कोई तिलिस्माती ताक़त या गंज़ीना–ए–पुर–असरार नहीं बल्कि महज़ एक आला–ए–कार है जो इंसानों की फ़राहम–करदा मालूमात से एक आमेज़ा तैय्यार करके सुपुर्द–ए–साइल कर देता है। अब ये आमेज़ा कभी ख़स–ओ–ख़ाशाक का मलग़ूबा और चूं–चूं का मुरब्बा साबित होता है तो कभी मुस्तनद मालूमात का ख़ज़ीना और कभी गड़मड़ और मुतज़ाद ख़्यालात का मजमूआ। चुनांचे जैसे हम दीगर डिजिटल ज़राए–ए–अब्लाग़ से फ़ायदा उठाते हैं वैसे ही मसनूई ज़हांनत से भी फ़ायदा उठा सकते हैं और इस आला–ए–कार को ख़िदमत–ए–दीन और दावत–ए–इस्लाम के लिए कार–आमद बना सकते हैं। इस सिलसिले में सोशल मीडिया पर जो ख़िदमात सरअंज़ाम दी जा रही हैं उन्हें मसनूई ज़हांनत के ज़रिए महमेज़ किया जा सकता है और सौती और उक़्सी तहरीमात बेहतर अन्दाज़ से और फ़ौरी तौर पर अंजाम दी जा सकती हैं। सौती किताबें बग़ैर किसी दस्तीय मदद के तैय्यार की जा सकती हैं, किसी एक ज़बान की तहरीर को दूसरी क़ौमों तक पहुँचाने के लिए मुख़्तलिफ़ ज़बानों में ज़रा सी नोक–पलक दुरुस्त करके आसानी से मुन्तक़िल किया जा सकता है। ऐसी वेबसाइट्स तैय्यार की जा सकती हैं जिनके वसीले से नौजवान नस्ल के क़ल्ब–ओ–दिमाग़ पर चस्पां शुकूक–ओ–शुबहात के जान–लेवा बल्कि ईमान–लेवा वाइरस का इज़ाला किया जा सके और इस्लाम पर वारिद होने वाले सवालात के तश्फ़ी–बख़्श जवाबात पेश किए जा सकें, नज़े क़लील–मुद्दती

बरक़ी–मवासलाती कोर्सेज़ के ज़रिए मुरत्तब तौर पर और अस्री तक़ाज़ों से हम–आहंगी के साथ उन्हें इस्लामी तालीमात से रुशनास कराया जा सकता है। इसी तरह बरक़ी ज़राए–ए–अब्लाग़ पर इस्लामी क्विज़ और मुक़ाबला जाती गेम्स के ज़रिए भी इस्लाम की सही तर्जुमानी की जा सकती है और स्कूल के बच्चों को इस तरह की दीगर दिलचस्प सरगर्मियों के ज़रिए इस्लाम की तरफ़ राग़िब किया जा सकता है।

इसके अलावा ऑनलाइन इस्लामी प्रोग्रामों के दीदा–ज़ीब बरक़ी इश्तेहारात तैय्यार करने में भी ए.आई. से मदद ली जा सकती है जो नौजवानों के लिए बाइस–ए–कशिश और लायक़–ए–तवज्जो हो। मज़ीद बरआं उलमा–ओ–दानिशवरान और अस्हाब–ए–इल्म व फ़ज़्ल हदीस व तफ़सीर की हज़ारों किताबों का लब–लुबाब और मन–चाहा मवाद और हवाले चंद क्लिक्स में अपनी निगाहों के सामने दस्ते गिरिफ़्ता पाते हैं और शब–ओ–रोज़ बग़ैर किसी छुट्टी के ये ख़दिमत–गुज़ार उनकी ख़दिमत के लिए मुस्तअद रहता है।

ख़ुलासा ये कि ए.आई. (Artificial Intelligence) दीगर बरक़ी इदारों (Digital Platforms) की तरह एक दोधारी तलवार है जिसका दुरुस्त इस्तेमाल दावती, तालीमी और तहक़ीकी सरगर्मियों को मज़ीद मोअस्सर और बरक़–रफ़्तार बना सकता है। इस टेक्नोलॉजी को इस्लामी उसूलों के मुताबिक इस्तेमाल करके वसी–ओ–अरीज़ पैमाने पर ख़दिमत–ए–दीन अंजाम दी जा सकती है और नस्ले–नौ में इस्लाम की सही रूह फूंकी जा सकती है। अलबत्ता इसका ग़लत इस्तेमाल इंसान को ऐसे गहरे गढ़े में फेंक देता है जहाँ से वापसी की राहें इन्तहाई दुश्वार–गुज़ार हो जाती हैं।

चुनांचे बालिग़–नज़री इसी में है कि हमारी तवज्जुहात हक़ायक़, हालात और नत–नए तहद्दियात (Challenges) की तरफ़ मुअनअतिफ़ हों और हमारी तवानाइयों का बड़ा हिस्सा इन ख़ारिजी अवामिल–ओ–ताक़ात, ख़तरात–ओ–तहद्दियात से मुक़ाबला–आराई और नबर्द–आज़्माई बल्कि इन वसाइल की इस्लामाइज़ेशन की कोशिशों में सर्फ़ हो। उलमा–ए–उम्मत और दाईयान–ए–इस्लाम ब–तौर–ए–ख़ास मग़रिबी तहज़ीब की हक़ीक़त और इसके संगीन असरात–ओ–ज़हरनाकी से आगाह हों कि नूर एक है और ज़ुल्मतें बेशुमार, जिसने मौजूद दौर में माबअद–ए–जदीद टेक्नोलॉजी (Ultra Modern Technology) के सहारे आलमे–इस्लाम के दीनी, मिल्ली और रवायती तशख़्ख़ुस पर अपनी कमर कस ली है और अपनी तहज़ीबी यल्गार से आलमे–इस्लाम को फ़िक्री और ज़ेहनी इर्तिदाद के दहाने पर ला खड़ा किया है और पूरे निज़ाम–ए–इस्लाम को सबोताज़ करने पर आमादा है। चुनांचे ज़रूरत इस बात की है कि हम अपने नौजवानों को इस टेक्नोलॉजी के रहम–ओ–करम पर छोड़ने के बजाय इसके इस्लामाइज़ेशन की फ़िक्र करें और इसके सामने बेसहारा होने के बजाय इसे अपने बस में करने की कोशिश करें और कसीर तादाद में ऐसे मुस्तनद और मुअतबर प्लेटफ़ार्म्स तैय्यार करें जहाँ इल्म–ए–दीन के प्यासे अपनी प्यास बुझा सकें और गुम–गश्तगान–ए–राह सही राह पा सकें।

दावत का जज़्बा

"वसाएल आमद–ओ–रफ़्त और ज़राए मवासलात इस दौर के मुक़ाबले में क़र्ने अव्वल में गोया कुछ नहीं थे मगर इसके बावजूद जिस तेज़ी से वह ताजिर हो या मज़दूर, आक़ा हो या ग़ुलाम, आलिम हो या आमी, दावत के जज़्बे से सरशार था......मगर आज दुनिया के सत्तर करोड़ से ज़्यादा मुसलमान इस मिशन को फ़रामोश करने के नतीजे में अपनी दाइयाना हैसियत और मक़ाम को खो चुके हैं। अगर ज़िन्दगी के तमाम शोबों में फैले हुए आज के मुसलमान अपने इस मक़सद को पेश नज़र रखकर काम करेंगे तो आज भी दुनिया में "लोग अल्लाह के दीन में फ़ौज दर फ़ौज दाख़िल हो रहे हैं" और "पासबां मिल गए काबे को सनम ख़ाने से" का मंज़र नज़र आ जाए। मुसलमान, डॉक्टर, इन्जीनियर, प्रोफ़ेसर, तालिब इल्म, कारीगर, मज़दूर, ताजिर, सरमायादार और ग़रीब, ग़रज़ मुसलमान अपने–अपने मक़ाम व माहौल को अक़ामते दीन और तब्लीग़े इस्लाम की हकीमाना जद्दोजहद से बदल सकता है। (बहवाला: तामीरे हयात: २५ अक्टूबर/१९४६ ईसवी) **मौलाना इस्हाक़ जलीस नदवी (रह0)**

इस्लामोफ़ोबिया
और सीरते नबवी (स0अ0व0)

मुहम्मद अरमग़ान बदायूनी नदवी

यूनानी भाषा में "फोबिया" डर या भय को कहते हैं। लगभग उन्नीसवीं सदी से यह शब्द इस्लाम के साथ मिलकर "इस्लामोफोबिया" की संज्ञा में प्रचलित है, जिसका अर्थ ग़ैरों में इस्लाम का डर बैठाना और इस्लाम के प्रति नफ़रत और दुश्मनी की भावनाओं को भड़काना है। मशहूर ब्रिटिश लेखक Runnymede Trust ने 1997 ई. में "Islamophobia: A Challenge for Us All" के शीर्षक से अपनी रिपोर्ट में यह लिखा था कि

"इस्लामोफोबिया की संक्षिप्त संज्ञा से मुराद इस्लाम का भय या उससे नफ़रत करना है और नतीजे के तौर पर तमाम या ज़्यादातर मुसलमानों के लिए नफ़रत और दुश्मनी की भावनाएँ पैदा करना है।" (Runnymede Trust, 1997 P: 1, Executive Summary)

आधुनिक युग में गढ़ी गई संज्ञाओं में बेशक यह एक नई संज्ञा समझी जाती है, लेकिन इसके तार बहुत पुराने हैं। इस्लाम और अहले–इस्लाम के ख़िलाफ़ बेवजह भय और आतंक का माहौल बनाना, नफ़रत का बाज़ार गर्म करना, तअस्सुब (भेदभाव) की आग भड़काना और झूठ–मूठ के प्रचार से काम लेना हर दौर में दुश्मनाने–दीन का तरीका रहा है। लेकिन इस्लाम की यह सबसे बड़ी विशेषता है कि वह सख़्त और ज़हरीली हवाओं के बावजूद हर दौर में फलता–फूलता रहा है।

इस्लाम की फ़ितरत में कुदरत ने लचक दी है
इतना ही यह उभरेगा जितना कि दबाओगे

यह अलग बात है कि हर दौर में इस्लाम–दुश्मनी के साधन और तौर–तरीके बदलते रहे हैं। मसलनः आप (स0अ0व0) ने जब फ़ारान की चोटियों से हक़ की पुकार लगाई तो आपको "सादिक" और "अमीन" कहने वालों ने (नऊज़ुबिल्लाह!) जादूगर, शायर, काहिन, पागल और ज्योतिषी कहा, तरह–तरह की गालियाँ दीं, भिन्न भिन्न चालें चलीं, प्रोपेगंडे किए, कुरआन–ए–मजीद में नुक़्स निकालने की कोशिश की, अल्लाह के आदेशों और इस्लामी तालीमात का मज़ाक़ उड़ाया, आपको और आपके सहाबा को तिरस्कार और ज़ुल्म का निशाना बनाया, सामाजिक बहिष्कार किया। मक्का के मुशरिकों की यह दुश्मनी इस हद तक बढ़ गई थी कि वह मक्का आने वाले हर व्यक्ति को आप (स0अ0व0) की बात सुनने से रोकते, आगाह करते और अपने कानों में रूई ठूंस लेते थे। आख़िरकार मुसलमानों को अपने प्यारे वतन से हिजरत करनी पड़ी, लेकिन मदीना पहुँचकर भी इस्लाम–दुश्मन तत्व मिटे नहीं, बल्कि मुनाफ़िक़ों और यहूद के गिरोह ने मुसलमानों को बड़ी तकलीफ़ें दीं और इस्लाम के दुर्ग में सेंध लगाने की हर कोशिश की।

इसमें शक नहीं कि दौर–ए–रिसालत में सीमित साधनों की वजह से इस्लाम–दुश्मनी के यह तत्व और दुश्मनी की भावनाएँ भौगोलिक दृष्टि से सीमित थीं। यह मुमकिन नहीं था कि इस्लाम के ख़िलाफ़ कोई आवाज़ उठाई जाए और वह तुरंत पूरी दुनिया में फैल जाए। लेकिन आज के दौर में विकसित साधनों ने इसे वैश्विक बना दिया है। आज यह आसान है कि पश्चिम से उठने वाला एक शोर कुछ ही लम्हों में पूरी दुनिया का मुद्दा बन जाए। इसलिए आज इस्लाम–दुश्मनी की गंभीरता बहुत बढ़ गई है और मुसलमानों की ग़फ़लत इस गंभीरता में और इज़ाफ़ा करती है।

दौर–ए–नबवी (स0अ0व0) में जिस तरह इस्लाम

और अहले–इस्लाम के ख़िलाफ़ नकारात्मक माहौल बनाया गया, लोगों के दिमाग़ों को ज़हरीला किया गया, ग़लतफ़हमियाँ फैलाई गईं और उस दौर के साधनों का उपयोग किया गया, ठीक वैसे ही आज यह फितना आधुनिक कलेवर और साधनों से लैस होकर "इस्लामोफोबिया" के नाम से सामने आया है। नतीजा यह है कि आज दुनिया के हर कोने में मुसलमानों को अजनबी नज़र से देखा जाता है। उनकी बदनामी की जाती है। उन्हें आतंकवादी कहा जाता है। उन्हें पिछड़ा और कट्टर बताया जाता है। इस्लाम की पाक तालीमात पर पाबंदी लगाने की कोशिश की जाती है। इंसानियत–सोज़ हरकतों में मुसलमानों को बेगुनाह फँसाया जाता है। औरतों के हक़ की बात कहकर इस्लाम की रौशन तारीख़ पर सवाल उठाए जाते हैं और इन सब बातों को साबित करने के लिए ज़मीन–आसमान के क़लाबे मिलाए जाते हैं।

इस्लाम और मुसलमानों के ख़िलाफ़ इस नफ़रत के तूफ़ान को भड़काने में टेक्नॉलॉजी आग में घी का काम कर रही है। ख़ास तौर पर मीडिया हर स्तर पर नकारात्मक किरदार निभा रहा है। झूठ और फ़रेब का ज़रिया बन गया है। ऐसी ख़बरें आम की जाती हैं जिनसे नकारात्मक माहौल बने। टीवी डिबेट्स में ऐसे नाम–निहाद मुस्लिम चेहरे बिठाए जाते हैं जो इस्लाम और मुस्लिम समाज की ग़लत तस्वीर पेश करते हैं।

यहाँ यह सवाल उठता है कि आख़िर हर दौर में इस्लाम और मुसलमान ही दुश्मनी का निशाना क्यों बने रहे? इसके जवाब में बहुत सी बातें कही जाती हैं, कभी यह अज्ञानता की वजह से होता है, कभी झूठे प्रचार का असर होता है, कभी यह ऐतिहासिक भेदभाव और राजनीतिक स्वार्थ का नतीजा होता है। लेकिन सबसे बुनियादी वजह इस्लाम का वह विशेष गुण है जो बाकी मज़ाहिब में नहीं। इस्लाम नफ़्सानी ख़्वाहिशों, राजनीतिक स्वार्थ और व्यक्तिगत दबावों का गुलाम नहीं है। इसके बरख़िलाफ़ इस्लाम वह मज़हब है जिसमें वैश्विक एकता की बेमिसाल शक्ति है। बराबरी के हक़ का पूरा निज़ाम है। इंसाफ़ का क़ायम करना इसका हिस्सा है। अमानतदारी, हमदर्दी, समाज से भ्रष्टाचार और अपराध मिटाना इसके हर मानने वाले का फ़र्ज़ है। और सबसे बढ़कर यह किताब व सुन्नत के तयशुदा हदूद का पाबंद है, न कि इंसानी अकल और नफ़्सानी हवाओं का।

असल में यही इस्लाम का वह जौहर है कि अगर यह पूरी चमक के साथ उभर जाए (जैसा कि कुरून–ए–ऊला में हुआ) तो दुनिया की तमाम क़ौमें इसकी पनाह में आ जाएँ। यही वह डर है जिसने हर दौर में दुनिया को इस्लाम–दुश्मनी पर उकसाया।

आज के दौर में जबकि फ़ासिस्ट ताक़तों की ज़हरीली साज़िशें गहरी हो चुकी हैं, ज़रूरत है कि मुसलमान सीरत–ए–नबवी (स0अ0व0) की रौशनी में ठोस प्लानिंग करें। रसूल–ए–अकरम (स0अ0व0) की हयात–ए–तय्यिबा से हमें मालूम होता है कि आपने इस्लाम की तालीमात के लिए बेहिसाब कुर्बानियाँ दीं, भूख झेली, तिरस्कार सुना, लेकिन सब्र किया, हिकमत और बर्दाश्त से काम लिया और दावत का मिशन जारी रखा। आपने अपने अख़्लाक़ और किरदार से इतनी आकर्षक ताक़त पैदा की कि जो भी उसके दायरे में आया, प्रभावित हुए बिना न रह सका।

सुल्ह–ए–हुदैबिया इस हिकमत का बेहतरीन नमूना है। आपकी स्थिरता और अटूट मेहनत का नतीजा यह हुआ कि सिर्फ़ 23 बरसों में अरब का नक़्शा बदल गया और इस्लाम चारों तरफ़ फैल गया।

आज भी ज़रूरत है कि मुसलमान सीरत–ए–नबवी की रहनुमाई में इस्लामोफोबिया का सुनियोजित तरीक़े से जवाब दें। अपनी सफ़ों में एकता पैदा करें। अपने दर्जे को समझें। हिकमत और अख़्लाक़ अपनाएँ। जोश से हटकर होश का रास्ता चुनें और अपने आचरण और किरदार से यह साबित कर दें कि इस्लाम ही दुनिया का सबसे मौज़ूँ मज़हब है, जो इंसानियत की सिसकियों का मरहम और उसके दर्द का इलाज़ है।

बेनज़ीर व बेमिसाल हस्ती

"सीरत ए मोहम्मदी (स0अ0व0) मिल्लते इब्राहीमी (अलैहिस्सलाम) और मिल्लते मोहम्मदी (स0अ0व0) की तारीख़ का एक ऐसा दरख़्शां उन्वान है जिस ने इस को इन्सानियत की बिरादरी में एक बेमिसाल व लाज़वाल मरतबा अता किया है। वह कौन है जिस की याद इतने बड़े पैमाने पर, इतनी अक़ीदत के साथ, इतनी उमूमियत के साथ, इतने इंतज़ार व इश्तियाक़ के साथ मनाई जाती हो?

कौन है जिस पर इतनी कसरत से और इतनी अक़ीदत व अज़मत के साथ दरूद व सलाम भेजा जाता हो?

जिस की सीरत, हालात और अख़्लाक़ पर इतना ज़बरदस्त कुतुबख़ाना बल्कि उसके सिर्फ़ आख़िरी हज के हालात पर ऐसी अज़ीम व बुलंद पाया किताबें लिखी जा चुकी हों और लिखी जा रही हों?

जिस के एक एक क़ौल और फ़ेल बल्कि एक–एक अदा, तास्सुर और कैफ़ियत की तशरीह व तफ़्सील में अइम्मा–ए–इस्लाम और उल्मा–ए–सलफ़ ने अपनी उमरें सर्फ़ की हों और उसके लिए अपने सारे आराम व राहत को हमेशा के लिए तज दिया हो?

जिस की सिद्दीक़त और अज़मत पर इंसानों के इतने बड़े गिरोह का हमेशा इत्तेफ़ाक़ व इज्तिमा रहा हो?

जिस का ज़िक्र करोड़ों इंसान दिन में पाँच मरतबा ज़रूर करते हों, जिसकी मोहब्बत इंसानों की इतनी बड़ी तादाद के दिल में जागुज़ीं और नक़्श हो, जिस के लिए नअत व सलाम का इतना बड़ा ज़खीरा तैयार हो चुका हो कि अगर उस को इकट्ठा किया जाए तो पूरी लाइब्रेरी तैयार हो जाए?

जिस के हालात व वाक़्यात से इतनी कसरत से इस्तिन्बात किया गया हो और उस की रौशनी में पूरा इस्लामी क़ानून तैयार किया गया हो?

जिस ने ज़िंदगी की हर ज़रूरत के लिए (ख़्वाह वह कैसी ही निजी और छोटी हो) पूरी वज़ाहत और तफ़्सील के साथ हिदायात दी हों, लश्करों की रवान्गी, शाहान ए आलम के नाम खुतूत और बैरूनी वुफ़ूद से मुलाक़ातों से लेकर नहाने–धोने, खाने–पीने और तहारत व इस्तिंजा के तमाम मामलात में जिसने यकसा तरीक़े पर इंसानों की अपने क़ौल व अमल से रहनुमाई की हो।

जिस की दुआएँ निहायत मुकम्मल, जामेअ और हैरत अंगेज़ हों और ज़बान ए हाल से खुद कहती हों कि ऐसी दुआएँ करने वाला और इंसानी ज़रूरतों से ऐसी वाक़फ़ियत रखने वाला आप (स0अ0व0) के सिवा कोई और नहीं हो सकता।

ग़रज़ ज़िंदगी का कोई शोबा हो और इंसानों की कोई ज़रूरत हो, हज़रत मुहम्मद (स0अ0व0) की तालीम का ऐजाज़ हर चीज़ से नुमायां है और उस का हर जुज़ आप (स0अ0व0) की हयाते तैय्यिबा का ऐसा उन्वान है जो हक़ व सिद्दीक़त की राहें हमारे सामने खोल देता है और शक व शुब्हे की कोई गुन्जाइश बाक़ी नहीं रहती। सीरत का यह ऐजाज़ सिर्फ़ मुसलमानों के लिए नहीं, दुनिया के तमाम इंसानों के लिए और क़यामत तक पैदा होने वाली तमाम नस्लों के लिए है, यह आफ़ताब की तरह सब पर ताबाँ व दरख़्शां और उस से ज़्यादा आलमगीर और नफ़ा रसां है लेकिन उन के लिए जिन के दिल पर मुहर नहीं लग चुकी और जो दिल की बीनाई से यकसर महरूम नहीं, जिन के अंदर फ़ितरत ए इंसानी की कुछ नुमूद, इंसानियत की कुछ रमक़ और शराफ़त और एहसान शनासी का कुछ असर अब भी बाक़ी है। ज़रूरत बस इस की है कि उस का थोड़ा सा परतो अपने अंदर पैदा करने की कोशिश करें और यह यक़ीन रखें कि उस्वए हसना का एक हल्का सा अक्स बल्कि उस का एक ज़र्रा हमारी तक़दीर बदल देने के लिए काफ़ी है, इख़्लास और तजुर्बा शर्त है।"

(इंसानियत आज भी इसी दर की मुहताज है: 19–22)

सहाफ़ी–ए–इस्लाम हज़रत मौलाना सैय्यद मुहम्मदुल हसनी (रह0)

R.N.I. No.
UPHIN/2009/30527

Monthly
ARAFAT KIRAN
Raebareli

Issue: 09 ❄ September 2025 ❄ Volume: 17

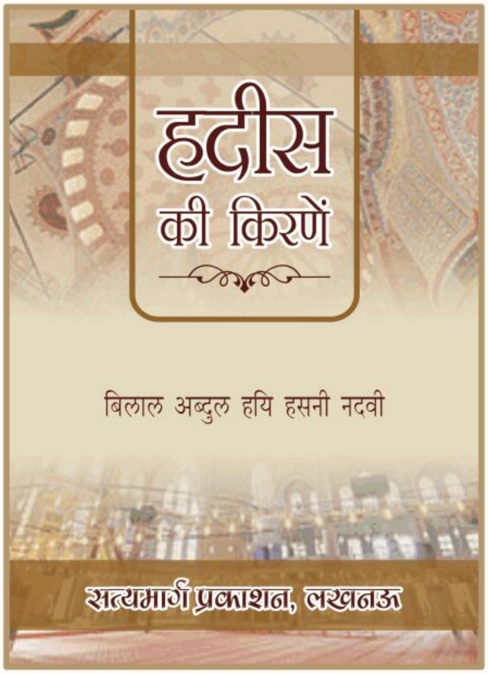

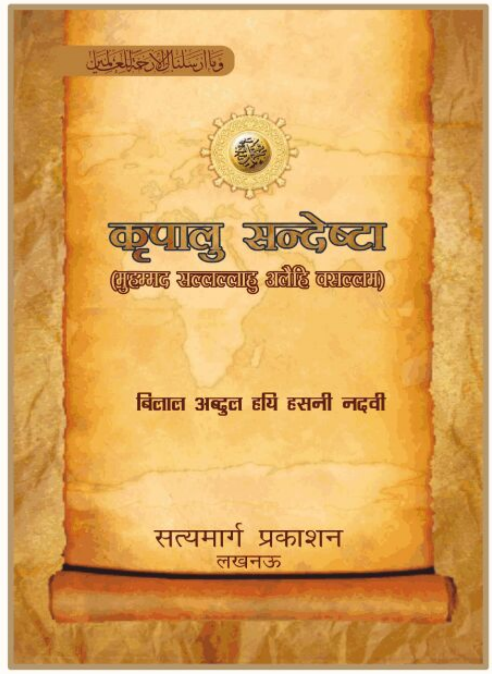

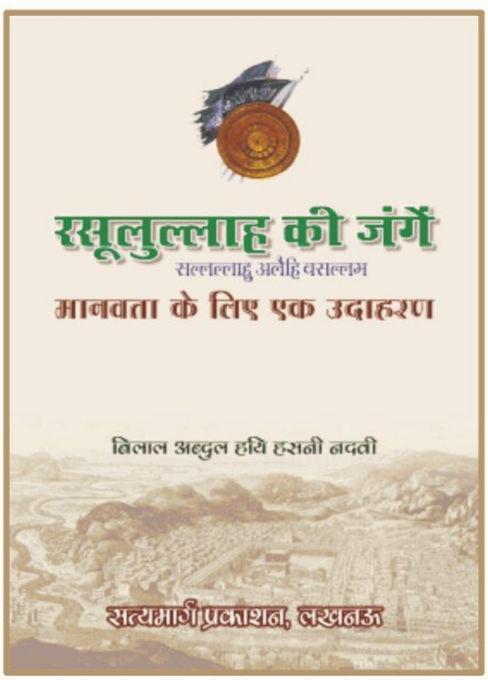

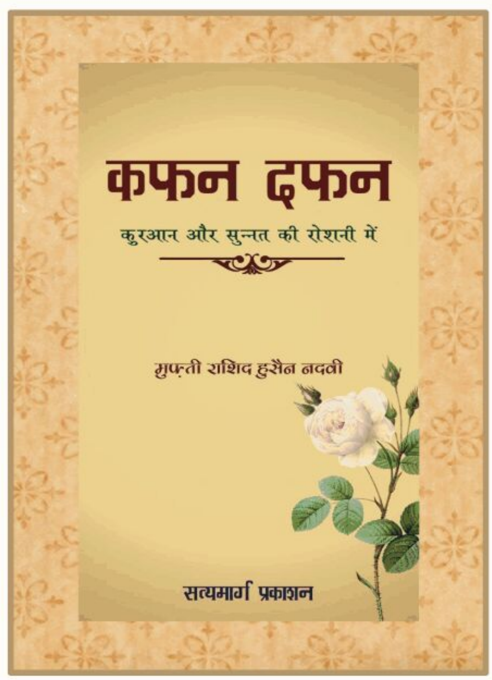

Editor: Bilal Abdul Hai Hasani Nadwi
MARKAZUL IMAM ABIL HASAN AL-NADWI
Dare Arafat, Takiya Kalan, Raebareli, U.P.
Mobile:9565271812
E-Mail: markazulimam@gmail.com
www.abulhasanalinadwi.org

Printed & Published by: Mohammad Hasan Nadwi
On Behalf of: Markazul Imam Abil Hasan Al-Nadwi
Printed at S.A. Offset Printers, Masjid ke peeche,Phatak
Abdullah Khan, Sabzi Mandi, Station Road, Raebareli, U.P.